ISSN 0976-0830

Mānaviki

AN INTERDISCIPLINARY JOURNAL OF HUMANITIES & SOCIAL SCIENCES

Volume 9 • Number 1 & 2 • 'Varsh Pratipada' & 'Vijaya Dashami', April & October 2018

विशेषांक

: राष्ट्रीय कार्यशाला :

स्वतंत्र भारत में हिन्दी की विकास यात्रा

(03-04 फरवरी 2018)

Editors

Pradeep Kumar Rao & Om Jee Upadhyay

The Journal of Maharana Pratap P.G. College, Jungle Dhusan, Gorakhpur (U.P.)

Mānaviki
An Interdisciplinary Journal of Humanities & Social Sciences

Editorial Advisory Board

U.P. Singh, Ex Vice-Chancellor, V.B.S. Purvanchal University, Jaunpur
R.P. Mishra, Ex Vice-Chancellor, Allahabad University, Allahabad
Pratap Singh, Ex Chairman, Higher Education Service Commission (HESC), Uttar Pradesh
Ram Achal Singh, Ex Vice-Chancellor, R.M.L. Awadh University, Faizabad and
Ex Chairman, Higher Education Service Commission (HESC), Uttar Pradesh
K.B. Pandey, Ex Vice-Chancellor, Chhatrapati Shahu Ji Maharaj University, Kanpur and
Ex Chairman, Public Service Commission, Uttar Pradesh
Harikesh Singh, Vice Chancellor, Jai Prakash University, Chapra (Bihar)
Yogendra Pratap Singh, Vice Chancellor, Chandrashekhar University, Ballia
P. Nag, Ex Vice Chancellor, Kashi Vidyapeeth, Varanasi
Shivajee Singh, Professor, Ancient History, Archaeology and Culture, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur
D.N. Tripathi, Ex Chairman, Indian Council of Historical Research (ICHR), New Delhi.
Narendra Kohli, Renowned author and thinker
Makkhan Lal, Director, Delhi Institute of Heritage Research and Management, New Delhi
Mrinal Shankar Raste, Ex Vice-Chancellor, Symbiosis International University, Pune.
Ram Sakal Pandey, Ex Pro Vice-Chancellor, Allahabad University, Allahabad
Jay Prakash Chhaturvedi, Professor, Physics, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur
Satish Chand Mittal, Professor, History, Kurukshetra University, Kurukshetra (Haryana)
S.C. Bose, Professor, English, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur
V.K. Srivastava, Professor, Geography, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur
N.K.M. Tripathi, Professor, Department of Psychology, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur
Sheo Bahal Singh, Professor, Sociology, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur
Pratibha Khanna, Professor, Education, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur
Murli Manohar Pathak, Professor, Sanskrit, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur
A.K. Singh, Professor, Philosophy, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur
R.N. Singh, Professor, Defence and Strategic Studies, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur
S.S. Verma, Professor, Geography, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur
Sadanand Prasad Gupta, Professor, Hindi, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur
Shri Prakash Mani Tripathi, Professor, Political Science, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur
P.C. Shukla, Professor, Commerce, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur
Rajawant Rao, Professor, Ancient History, Archaeology and Culture, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur
Himanshu Chatruvedi, Professor, History, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur
Santosh Shukla, Professor, Sanskrit, Jawaharlal Nehru University, New Delhi
Ambika Dutt Sharma, Professor, Philosophy, Hari Singh Gaur University, Sagar (M.P.)
Vivek Nigam, Professor, Economics, Ewing Christian College, Allahabad
Pragya Mishra, Professor, Ancient History, Ram Manohar Lohia Awadh University, Faizabad
Satyendra Kumar Singh, Professor, Music and Fine Arts, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur
Usha Singh, Professor, Music and Fine Arts, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur
Rajesh Singh, Professor, Political Science, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur
Manvendra Pratap Singh, Professor, Sociology, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur
Mahesh Kumar Sharan, Professor, Maghadh University, Bodhgaya (Bihar)
S.S. Das, Professor, Chemistry, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur
D.K. Singh, Professor, Zoology, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur
Ravi Shankar Singh, Professor, Physics, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur
Vinod Kumar Singh, Professor, Defence & Strategic Studies, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur
Mrityunjay Kumar, Journalist

Mānaviki

AN INTERDISCIPLINARY JOURNAL OF HUMANITIES & SOCIAL SCIENCES

Volume 9 • Number 1 & 2 • 'Varsh Pratipada' & 'Vijaya Dashami', April & October 2018

Editors

Pradeep Kumar Rao & Om Jee Upadhyay

Co-Editors

Avinash Pratap Singh & Subodh Kumar Mishra

The Journal of

Maharana Pratap P.G. College

Jungle Dhusan, Gorakhpur (U.P.)

This Journal is a *Referral* Volume.

ISSN- 0976-0830

Vol. 9 • No. 1 & 2 • 'Varsh Pratipada' & 'Vijaya Dashami', April & October 2018

Mānavikī, an interdisciplinary ***refereed or peer reviewed*** journal of Humanities and Social Sciences is a biannual (Varsh Pratipada and Vijaya Dashami, i.e. April and October months of a year) and bilingual journal of Maharana Pratap P.G. College Jungle Dhusan, Gorakhpur (UP).

Copyright of the published articles, including abstracts, vests in the Editors. The objective is to ensure full Copyright protection and to disseminate the articles, and the journal, to the widest possible readership. Authors may use the article elsewhere after obtaining prior permission from the editors.

Research Papers related to Humanities and Social Sciences are invited for publication in the journal. Research papers, book reviews, Subscription and other enquiries should be sent to – Subodh Kumar Mishra, Maharana Pratap P.G. College, Jungle Dhusan, Gorakhpur-273014 (U.P.), Mob. : 9452971570, 8896240522. You may also e-mail your contributions and correspondence at *manavikijournals@gmail.com or mishrasubodh389@gmail.com*

Guidelines for Contributors given on the inner side of the back cover.

The Editors and the Publisher can not be held responsible for errors and any consequences arising from the use of information contained in this journal. The views and opinions expressed do not necessarily reflect those of the editors and the publisher.

Designed & Printed at : Moti Paper Convertors, Betia Raj House, Betiahata, Gorakhpur

Subscription Rates

	Individual		Institutional	
Annual	Rs. 300	US $ 30	Rs. 500	US $ 50
Five Years	Rs. 1250	US $ 80	Rs. 2000	US $ 125
Life (15 Years)	Rs 2500	US $ 150	Rs. 4000	US $ 200

सम्पादकीय ...

भाषा मानव को मनुष्य बनाती है। भाषा वह प्रथम महत्त्वपूर्ण कारक है जो मानव को पशु से अलग पहचान देती है। जीव रूपी मानव को जब भाषा मिलती है तब वह बुद्धि, विवेक, कौशल, सभ्यता-संस्कृति का हिस्सा बनता है। समाज का अंग बनता है। भाषा अपने-आप को पहचानने का साधन है। भाषा आत्मबोध कराती है। भाषा जीवन-जीने का ढंग सिखाती है। भाषा यथार्थ की पहचान कराती है। सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' लिखते हैं कि- ''अपनी अस्मिता की पहचान, मूल्यबोध और यथार्थ की पहचान के तीन रास्ते, और अन्तहीन रास्ते, भाषा हमारे लिए खोल देती है।'' इसी आधार पर वे कहतें हैं कि भाषा संस्कृति की बुनियाद होती है। स्वाभाविक है मनुष्य जिस भाषा में जन्म लेता है, जिसमें पलता है, जिसमें सीखता है उसी भाषा में सोचने-समझने की शक्ति का विकास होता है। उसी भाषा में वह मौलिक चिन्तन करता है। उसी भाषा में वह सपने देखता है। उसके कल्पना-लोक की भाषा वही होती है। यही बात मनुष्य के साथ-साथ समाज, संस्कृति एवं राष्ट्र पर लागू होती है। हर समाज, संस्कृति एवं राष्ट्र की अपनी भाषा होती है जिसमें वह राष्ट्र प्रकट होता है। अपनी भाषा में ही समाज, संस्कृति, राष्ट्र के अस्तित्व की पहचान होती है। अपनी भाषा में ही समाज, संस्कृति और राष्ट्र मुखर होता है। अपनी भाषा में ही वह विकसित होता है। भाषा के उत्थान एवं पतन में सम्बन्धित समाज, संस्कृति एवं राष्ट्र का उत्थान-पतन निहित होता है।

भारतीय समाज, संस्कृति एवं राष्ट्र का अभ्युदय क्रमशः प्राकृत, पालि, संस्कृत और आधुनिक युग में हिन्दी भाषा में हुआ है। भारत की क्षेत्रीय भाषाएँ भारत के उपर्युक्त भाषा-परिवारों से ही निकली हैं। विदेशी आक्रमणों की आँधी में स्वराज खो चुके भारत में संस्कृत-भाषा का स्थान धीरे-धीरे हिन्दी ने ग्रहण किया और मध्ययुगीन भारत की भाषा बनती गई। ब्रिटिश उपनिवेशवादी युग में ब्रिटिश शासकों द्वारा भारतीय शिक्षा-व्यवस्था को नष्ट कर अंग्रेजी-शिक्षा पद्धति के विकास के साथ उन्नीसवीं शताब्दी में अंग्रेजी भाषा शिक्षा की भाषा बनी। परिणामतः बीसवीं शताब्दी में अंग्रेजी-शिक्षा-पद्धति का जैसे-जैसे प्रसार हुआ वैसे-वैसे शिक्षा रोजगार का पर्याय बनती गयी और अंग्रेजी भाषा का प्रभाव बढ़ता गया।

भारत की आजादी के साथ जैसा सांस्कृतिक पुनर्जागरण एवं राष्ट्रीय पुनर्निर्माण होना चाहिए था, सम्भव नहीं हुआ। आजाद भारत में ब्रिटिश शिक्षा पद्धति एवं अंग्रेजी भाषा को मैकाले के मानस-पुत्रों ने महत्त्वपूर्ण बनाए रखा। परिणामतः आजाद भारत में एक नए सामाजिक वर्ग का उदय हुआ जो अपनी सांस्कृतिक विरासत, अपनी परम्परा, अपनी भाषा से कटता गया। तथाकथित यह आभिजात्य वर्ग भी भारतीय भाषाओं, विशेषकर संस्कृत एवं हिन्दी के विकास में रोड़ा बनकर खड़ा रहा। शासन-प्रशासन में इस आभिजात्य वर्ग की महत्त्वपूर्ण भूमिका के कारण अंग्रेजी शिक्षा रोजगार का आधार बनती गयी और भारतीय भाषाएँ उपेक्षित होती गयीं। यद्यपि इन्हीं भारतीय भाषाओं के साहित्य ने साम्राज्यवाद-विरोधी भावना का विकास कर भारत को आजादी दिलाई। मुख्य रूप से बंगला, मलयालम, तमिल, मराठी, उड़िया और हिन्दी भाषा ने इस दिशा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

वस्तुत: हिन्दी का विकास राष्ट्रीय चेतना के विकास के साथ हुआ और यह भारत वर्ष की समग्र संस्कृति की संवाहिका बनी। अज्ञेय के शब्दों में 'आजाद भारत में भारतीय अस्मिता एवं राष्ट्रीय बोध के आक्रान्त होने के कारण हिन्दी भी आक्रान्त है। आज हम खतरे में हैं जिससे हिन्दी हमें बचा सकती है।'

इक्कीसवीं सदी में आज जब भारत अपने राष्ट्रीय अस्मिता एवं आत्मबोध के साथ सांस्कृतिक पुनर्जागरण के मार्ग पर चल पड़ा है, स्वभाषा विशेषकर हिन्दी को अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी ही होगी। आजाद भारत में हिन्दी ने अपनी विकास-यात्रा में अनेक उतार-चढ़ाव देखे हैं। हिन्दी की विकास-यात्रा एवं उसकी वर्तमान की भूमिका पर विमर्श वर्तमान युग की माँग है। अत: 'स्वतन्त्र भारत में हिन्दी की विकास -यात्रा' विषय पर 'उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान' के सहयोग से दो दिवसीय कार्यशाला का आयोजन महाराणा प्रताप पी.जी. कालेज, जंगल धूसड़, गोरखपुर के हिन्दी-विभाग द्वारा 3 एवं 4 फरवरी 2018 को आयोजित किया गया।

राष्ट्रीय कार्यशाला में सम्मिलित विद्वानों, शोधार्थियों के साथ-साथ इस कार्यशाला में उपस्थित न हो पाने वाले अनेक विद्वानों ने इस विषय पर प्रस्तुत एवं प्रदत्त शोध-पत्रों/आलेखों के प्रकाशन की इच्छा व्यक्त की थी। उन सभी के आग्रह एवं प्रकाशन की अपनी समृद्ध परम्परा को बढ़ाते हुए हमने उक्त विषय पर 'मानविकी' के विशेषांक को प्रकाशित करने का निर्णय लिया।

स्वतंत्र भारत में हिन्दी की विकास-यात्रा पर आयोजित दो दिवसीय कार्यशाला को सम्पन्न कराने हेतु दिए गए सहयोग के लिए उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान एवं उसके कार्यकारी अध्यक्ष प्रो. सदानन्द प्रसाद गुप्त का मैं हृदय से आभारी हूँ। इस कार्यशाला के उद्घाटन समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में विधान सभा अध्यक्ष माननीय श्री हृदय नारायन दीक्षित ने अपना अमूल्य मार्गदर्शन दिया। समारोह में दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर के कुलपति प्रो. विजय कृष्ण सिंह, प्रतिष्ठित साहित्यकार प्रो. रामदेव शुक्ल (गोरखपुर) ने अपनी प्रभावी उपस्थिति दर्ज की। राष्ट्रीय कार्यशाला में प्रो. रमेशचन्द्र त्रिपाठी (लखनऊ), प्रो. पवन अग्रवाल (लखनऊ), प्रो. अनुपम आनन्द (प्रयागराज), डॉ. कन्हैया सिंह (आजमगढ़), डॉ. आद्याप्रसाद द्विवेदी (गोरखपुर), डॉ. वेदप्रकाश पाण्डेय (गोरखपुर), डॉ. गायत्री सिंह (कानपुर), प्रो. योगेन्द्र प्रताप सिंह (प्रयागराज), डॉ. संगीता पटेल (फतेहपुर), प्रो. सिद्धार्थशंकर त्रिपाठी (छपरा), डॉ. सर्वेश पाण्डेय (मऊ), डॉ. अनामिका सिंह (अयोध्या), डॉ. नीरज सिंह (इटावा), डॉ. सुशील कुमार पाण्डेय (सुल्तानपुर), डॉ. जगदम्बा प्रसाद दूबे (आजमगढ़), डॉ. मीनाक्षी सिंह (उन्नाव) आदि विद्वानों के शोध-पत्र सर्वाधिक प्रसंशित हुए। कई विद्वानों ने अपनी अनुपस्थिति के बावजूद शोध-पत्र अथवा आलेख प्रकाशन हेतु उपलब्ध कराया। इन सभी विद्वानों के प्रति हार्दिक आभार।

मुझे विश्वास है कि 'मानविकी' का यह विशेषांक स्वतंत्र भारत में हिन्दी की विकास-यात्रा को रेखांकित करने में महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगा। इस विषय के जिज्ञासु पाठकों के लिए भी यह प्रकाशन उपयोगी होगा।

(प्रदीप कुमार राव)

Mānaviki

An Interdisciplinary Journal of Humanities & Social Sciences

Volume 9 Number 1 & 2 'Varsh Pratipada' & 'Vijaya Dashami', April & October 2018

CONTENTS

Articles **Pages**

1. राष्ट्रभाषा हिन्दी की संवैधानिक व्यवस्था
   प्रो. श्रीप्रकाश मणि त्रिपाठी 1

2. हिन्दी का उद्‌भव और विकास
   डॉ. अनुज प्रताप सिंह 7

3. भारत के कार्यालयों में हिन्दी के प्रयोग की विकास यात्रा
   डॉ. योगेन्द्र प्रताप सिंह 19

4. स्वतंत्र भारत में हिन्दी की विकास यात्रा – वैश्विक सन्दर्भ में
   डॉ. गायत्री सिंह 29

5. हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार में प्रादेशिक हिन्दी सेवी संस्थाओं का योगदान
   डॉ. आद्या प्रसाद द्विवेदी 38

6. स्वतंत्रता के बाद हिन्दी की विकास यात्रा
   डॉ. मीनाक्षी सिंह 44

7. राष्ट्रभाषा हिन्दी के अनन्य समर्थक
   डॉ. वेदप्रकाश पाण्डेय 48

8. हिन्दी भाषा की प्रतिष्ठा के लिए संघर्ष करने वाले अनन्य हिन्दी समर्थक
   डॉ. आरती सिंह 62

9. हिन्दी का वैश्विक परिदृश्य
   डॉ. कृष्णकान्त दीक्षित 71

10. वैश्विक परिदृश्य और हिन्दी
    डॉ. कृष्ण कुमार एवं सुबोध कुमार मिश्र 75

11. सामाजिक-सांस्कृतिक संवेदना और हिन्दी पत्रकारिता
अजय कुमार सिंह एवं प्रदीप कुमार राव 80

12. आधुनिकता और लोक संस्कृति
सिद्धार्थ शंकर 86

13. हिन्दी की विकास यात्रा में भारतीय संसद का योगदान
डॉ. अविनाश प्रताप सिंह 93

पुनर्पाठ -

1. अपनी भाषा पर विचार
आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 98

राष्ट्रभाषा हिन्दी की संवैधानिक व्यवस्था

प्रो. श्रीप्रकाश मणि त्रिपाठी*

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के द्वारा भरूच (गुजरात) में सर्वप्रथम राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी को मान्यता प्रदान की गयी थी। स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् 14 सितम्बर 1947 को संविधान सभा ने सर्वसम्मति से हिन्दी को राजभाषा का दर्जा दिये जाने का निर्णय लिया।

संविधान के अनुच्छेद 343 खण्ड-1 के अनुसार संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी। संविधान लागू होने से पहले सारा सरकारी काम अंग्रेजी में हो रहा था। स्वयं संविधान की धाराओं को अंग्रेजी में प्रस्तुत और पारित किया गया। संविधान का हिन्दी अनुवाद तदन्तर प्रस्तुत किया गया। अंग्रेजी के स्थान पर पूर्णतः हिन्दी को स्थापित करने की व्यावहारिक कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए खण्ड-2 में व्यवस्था दी गयी- ''26 जनवरी 1965 तक अंग्रेजी उन सभी प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त की जाती रहेगी, जिनके लिए वह संविधान लागू होने मे ठीक पहले की जाती रही थी।'' यह भी व्यवस्था है कि- ''महामहिम राष्ट्रपति महोदय के आदेशानुसार उक्त 15 वर्ष की अवधि में राजकीय प्रयोजनों में से किसी के लिए अंग्रेजी के साथ-साथ हिन्दी का प्रयोग प्राधिकृत किया जा सकेगा।''

उक्त धारा के अन्तर्गत सरकारी कामकाज में हिन्दी को बढ़ाने के उद्देश्य से 27 मई 1952 को राष्ट्रपति का पहला आदेश जारी किया गया। इस आदेश के अनुसार राज्यों के राज्यपाल, सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति के अधिपत्रों के लिए हिन्दी का प्रयोग प्राधिकृत किया गया। दिसम्बर 1955 में महामहिम राष्ट्रपति का भाषा सम्बन्धी दूसरा अध्यादेश जारी किया गया, जिसमें निम्नलिखित प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी के साथ-साथ हिन्दी का प्रयोग प्राधिकृत किया गया।

1. जनता के साथ पत्र-व्यवहार।
2. प्रशासनिक रिपोर्टों, सरकारी पत्रिकाओं तथा संसद को प्रस्तुत की जाने वाली रिपोर्टें।
3. सरकारी संकल्पों और विधायी नियमों में।

---

*आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, दी.द.उ. गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर-273009

4. जिन राज्यों ने हिन्दी को राजभाषा माना है उनके साथ पत्र-व्यवहार।

5. सन्धि-पत्र और करार।

6. अन्य देशों की सरकारों तथा उनके दूतों और अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के साथ पत्र-व्यवहार।

7. राजनयिक और कौंसिलीय पदाधिकारियों और अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों में भारतीय प्रतिनिधियों के नाम जारी किये जाने वाले पत्रों आदि में।

राजभाषाएँ

अनु. 345 (1) के अनुसार राज्य का विधान मण्डल उस राज्य के राजकीय प्रयोजनों में सब या किसी के लिए प्रयोग के अर्थ, उस राज्य में प्रयुक्त होने वाली किसी एक या अनेक को या हिन्दी को प्रयोग के लिए प्राधिकृत कर सकेगा। इसी अनुच्छेद में यह व्यवस्था भी कर दी गयी है कि जब तक विधान मण्डल विधि द्वारा अन्यथा उपबन्ध न करें, अंग्रेजी उन सब प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त की जाती रहेगी, जिनके लिए संविधान लागू होने के ठीक पहले वह प्रयुक्त की जाती थी।

अनुच्छेद 346 (2) में कहा गया है कि एक राज्य से दूसरे राज्य और संघ के बीच संचार की भाषा तत्समय संघ के राजकीय प्रयोजनों में प्रयुक्त होने वाली भाषा ही प्राधिकृत भाषा होगी परन्तु दो या अधिक राज्य निश्चय करें तो उनके और संघ के बीच संचार के लिए हिन्दी का प्रयोग हो सकता है।

उपर्युक्त अनुच्छेदों से स्पष्ट है कि भाषा के सम्बन्ध में राज्य सरकारों को पूरी छूट दी गयी। वर्तमान में उत्तर प्रदेश, मधय प्रदेश, राजस्थान, बिहार, हरियाणा, उत्तराखण्ड, झारखण्ड, दिल्ली एवं हिमांचल प्रदेश में राजभाषा हिन्दी मान्य है। उपर्युक्त राज्यों में आपसी पत्र-व्यवहार की भाषा हिन्दी है। इनके अतिरिक्त अहिन्दी राज्यों में महाराष्ट्र तथा गुजरात की राज्य सरकारों द्वारा हिन्दीभाषी राज्यों में हिन्दी का प्रयोग सभी सरकारी प्रयोजनों के लिए बढ़ती जा रही है। सम्भव है, इन राज्यों में भी सारा कार्य हिन्दी में होने लगे।

न्याय एवं विधि की भाषा

अनुच्छेद 348 (1) के अनुसार उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों में कार्यवाही की भाषा अंग्रेजी होगी। इसी अनुच्छेद में यह भी कहा गया है कि संसद में विधेयक अथवा प्रस्तावित संशोधनों का प्राधिकृत पाठ अंग्रेजी में होगा।

इसके अतिरिक्त आदेश, नियम, विनियम इस संविधान के अधीन अथवा संसद या राज्यों के विधान मण्डलों द्वारा किसी विधि के अधीन निकाले जायें, उन सबके प्राधिकृत पाठ अंग्रेजी भाषा में होंगे।

अनुच्छेद 348 खण्ड-3 (2) में स्पष्ट किया गया है कि - जहाँ राज्य सरकार ने अंग्रेजी के अतिरिक्त अन्य किसी भाषा का प्रयोग के लिए प्राधिकृत किया है, उस राज्य के राजकीय सूचना-पत्र में प्रकाशित उस राज्य के गवर्नर के प्राधिकार से प्रकाशित अंग्रेजी भाषा में उसका अनुवाद ही प्राधिकृत पाठ माना जायेगा।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि कानून और न्याय की भाषा उन राज्यों में ही जहाँ हिन्दी को राजभाषा मान लिया गया है, अंग्रेजी ही है। नियम, अधिनियम, विनियम तथा विधि का प्राधिकृत पाठ अंग्रेजी में ही बनाये जाते हैं। बाद में अनुवाद मात्र कर दिया जाता है जबकि होना यह चाहिए था कि सभी सरकारी आदेश और कानून हिन्दी में ही लिखे जाने चाहिए थे और जरूरत होती तो उन्हें अंग्रेजी में बदला जाता। इस प्रकार न्याय और कानून के क्षेत्र में हिन्दी का समुचित प्रयोग हिन्दी राज्यों में भी अभी तक नहीं हो सका है।

अनुच्छेद 343 खण्ड-1 में भाषा सम्बन्धी प्रावधानों को लागू करने के लिए 15 वर्षों के कालावधि में सभी राजकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी का प्रयोग किया जाता रहेगा। संविधान निर्माताओं ने 15 वर्षों की व्यवस्था इसलिए की थी कि इस अवधि में सभी प्रशासक अपने को इस योग्य बना लें कि हिन्दी में कार्य सम्भव हो सके। इस सम्बन्ध में संविधान सभा के अध्यक्ष और बाद में महामहिम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के शब्द उल्लेखनीय हैं- ''संविधान में उल्लिखित 15 वर्षों की अवधि वस्तुत: उनके लिए है जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं। हिन्दीभाषी राज्यों को तत्काल हिन्दी भाषा के माध्यम से सारा कामकाज करना है।''

15 वर्षों की कालावधि में ही अहिन्दी प्रदेशों में हिन्दी का विरोध बढ़ने लगा। अत: संविधान के 343 खण्ड-3 में विहित उपबन्धों के अधीन 15 वर्षों का समय बीत जाने के बाद भी अंग्रेजी का प्रयोग जारी रखने के लिए 1963 में राजभाषा अधिनियम बनाया गया। सन् 1967 में राजभाषा अधिनियम 1963 का संशोधन पारित किया गया। उक्त अधिनियम के अनुसार- 26 जनवरी, 1965 के बाद हिन्दी सभी राजकीय प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त होगी; परन्तु उसके साथ-साथ अंग्रेजी भी सह-राजभाषा के रूप में प्रयुक्त की जाती रहेगी।

राजभाषा अधिनियम ने अंग्रेजी को सह-भाषा के रूप में मान्यता दी थी। परिणामस्वरूप केन्द्र तथा राज्यों में अनिश्चित काल के लिए अंग्रेजी में कार्य करने की छूट मिल गयी। वस्तुस्थिति यह है कि सारा कामकाज अंग्रेजी में होता है। बाद में उसका अनुवाद हिन्दी में कर दिया जाता है। कानून के अनेक क्षेत्रों में अंग्रेजी पाठ को ही प्राधिकृत पाठ माने जाने के कारण अंग्रेजी का स्थान ही सर्वोपरि हो गया है।

राजभाषा आयोग और समिति

संविधान का अनुच्छेद 344 खण्ड (1) महामहिम राष्ट्रपति महोदय को सुझाव देता है कि संविधान लागू होने के पाँच वर्ष तथा दस वर्ष की समाप्ति पर आदेश द्वारा पुनः एक आयोग गठित करेंगे। इस आयोग में अष्टम् अनुसूची में उल्लिखित भाषाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले सदस्य होंगे। इस आयोग का कार्य संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए हिन्दी का प्रयोग बढ़ाने तथा अंग्रेजी का प्रयोग निर्वाहित करने के लिए महामहिम राष्ट्रपति महोदय को सुझाव देना होगा।

अनुच्छेद 344 खण्ड (4) के अनुसार आयोग के सुझावों पर विचार करने के लिए एक समिति गठित की जायेगी। इसी समिति में लोकसभा के दस सदस्य होंगे जो क्रमशः लोकसभा तथा राज्यसभा के सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति द्वारा निर्वाचित होंगे। अनुच्छेद 344 खण्ड-5 के अनुसार समिति की सिफारिशों पर विचार करने के बाद राष्ट्रपति सब सिफारिशों अथवा कुछ को मानते हुए आदेश जारी कर सकेंगे।

संविधान के प्रावधानों के अनुसार 7 जून 1955 को आयोग का गठन हुआ। बालगंगाधन खेर इसके अध्यक्ष थे। जुलाई 1956 में आयोग ने प्रत्यावेदन राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत किया। आयोग के मुख्य सुझाव निम्नलिखित थे-

1. सारे देश में माध्यमिक स्तर पर हिन्दी अनिवार्य की जाय।
2. जनतंत्र में अखिल भारतीय स्तर पर अंग्रेजी का प्रयोग सम्भव नहीं। अधिक लोगों द्वारा बोली जाने वाली हिन्दी भाषा समस्त भारत के लिए उपयुक्त है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अंग्रेजी का प्रयोग ठीक है, किन्तु शिक्षा प्रशासन, सार्वजनिक जीवन तथा दैनिक कार्य-कलापों में विदेशी भाषा का व्यवहार अनुचित है।
3. राज्य व संघ की सरकारें किसी स्तर पर हिन्दी का ज्ञान अनिवार्य करें।
4. देश में न्याय देश की भाषा में किया जाये।

संविधान के निर्देशानुसार आयोग की सिफारिशों पर विचारार्थ भाषा समिति का गठन किया गया, जिसकी पहली बैठक 16 नवम्बर 1957 को हुई। श्री गोविन्द वल्लभ पन्त इसके अध्यक्ष थे। समिति ने 8 फरवरी, 1959 को रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट में यह कहा गया कि संघ सरकार द्वारा ऐसी योजना बनायी जाय जिसके द्वारा हिन्दी का अधिक-से-अधिक विकास हो, परन्तु बल इस पर दिया गया कि संघ के सभी प्रयोजनों के लिए हिन्दी के साथ-साथ अंग्रेजी का प्रयोग चलता रहे।

श्री पुरुषोत्तम दास टण्डन तथा सेठ गोविन्द दास ने समिति की उक्त रिपोर्ट से असहमति प्रकट की थी। उक्त समिति की सिफारिशें ही आगे चलकर 1963 के राजभाषा अधिनियम का आधार बनी, जिनके अनुसार अंग्रेजी को हिन्दी के साथ सहभाषा के रूप में मान्यता दी गयी।

अनुच्छेद 351 सरकार की भाषा सम्बन्धी नीति को निर्देशित करता है और इस दृष्टि से यह बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसमें कहा गया है- ''हिन्दी भाषा की प्रसार वृद्धि करना, उसका विकास करना ताकि वह भारत की सामासिक संस्कृति के सब तत्त्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके, तथा उसकी आत्मीयता में हस्तक्षेप किये बिना हिन्दुस्तानी और अष्टम् अनुसूची में उल्लिखित अन्य भारतीय भाषाओं के रूप शैली और पदावली को आत्मसात करते हुए तथा जहाँ आवश्यक हो वहाँ उसके शब्द भण्डार के लिए मुख्यत: संस्कृत से तथा गौणत: वैसी उल्लिखित भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करना संघ का कर्तव्य होगा।''

संविधान की धाराओं से स्पष्ट हो जाता है कि उसकी भाषा सम्बन्धी नीति हिन्दी के पक्ष में है और हिन्दी का सभी राजकीय प्रयोजनों में प्रयोग संघ सरकार की भाषा नीति है। हिन्दी का प्रयोग बढ़ाने के लिए संघ सरकार और राज्य सरकारों ने समय-समय पर नियम, विनियम बनाये हैं, जिनके फलस्वरूप हिन्दी का प्रयोग उत्तरोत्तर बढ़ रहा है, परन्तु हिन्दी का अपेक्षित प्रयोग और विकास नहीं हो सका।

इसका कारण यह है कि संघ और राज्य दोनों के पास ही अंग्रेजी में काम करने का विकल्प है, जिसके कारण अंग्रेजी में काम करने के अभ्यस्त हिन्दी जानने वाले भी सरकारी काम के लिए अंग्रेजी का प्रयोग करते हैं। राजभाषा अधिनियम ने अंग्रेजी को सहभाषा के रूप में स्वीकार किया था, जिनके कारण हिन्दी में काम करने की अनिवार्यता नहीं रही। अनिवार्यता न होने के कारण हिन्दी के प्रयोग के सम्बन्ध में प्रशासकीय वर्ग में उदासीनता बनी रही जिससे हिन्दी प्रयोग में शिथिलता आती गयी है।

वस्तुत: भारतीय भाषाओं से हिन्दी का कोई बैर नहीं है। वे तो भारत की बहुभाषिकता का शृंगार है। राजभाषा के प्रश्न को क्षेत्रीय अस्मिता से जोड़ना असंवैधानिक है और राष्ट्रीय एकता का विध्वंसक भी। इसका प्रमुख कारण निष्ठा की कमी और अंग्रेजी की श्रेष्ठता का दबाव है जिसके कारण अभी तक भाषा के प्रश्न को सुलझा नहीं जा पाया है।

राष्ट्रभाषा हिन्दी की सर्वप्रमुख विशिष्टता है कि वह किसी भी अन्य भाषा या बोली की श्रेष्ठता को कमतर नहीं करती, वरन् बहुत ही उदारतापूर्वक अन्य भाषाओं के शब्दों को सहर्ष हृदयंगम करती हुई आगे बढ़ती जाती रही है। जिस प्रकार भारतीय संस्कृति अनेकानेक व्यवधान एवं अवरोधों के बाद भी गतिमान है और समृद्ध हो रही है, ठीक उसी तरह राजभाषा हिन्दी भी समस्त अवरोधों को पार करती हुई अपना समस्त अधिकार एक-न-एक दिन अवश्य प्राप्त करेगी।

देश और जनमानस को राष्ट्रभाषा हिन्दी के माधयम से ज्ञान एवं विज्ञान के क्षेत्र में विशिष्टता से परिपूर्ण करने के लिए उच्चस्तरीय प्रयत्न किये जा रहे हैं। पूर्व प्रधानमंत्री माननीय अटल बिहारी वाजपेयी जी स्वदेश एवं विदेश में भी हिन्दी में सम्भाषण (संवाद) करते रहे हैं। अहिन्दी भाषी लोग

भी उनके अभिव्यक्ति कौशल के प्रति मंत्र-मुग्ध देखे गये हैं। भारत संघ के वर्तमान प्रधानमंत्री माननीय श्री नरेन्द्र दामोदरदास मोदी के हिन्दी सम्भाषण स्वदेश और अन्य देशों में अतिशय प्रभावी हैं। उनकी भाषा में आत्मीयता, सहृदयता एवं वाग्विदग्धाता के साथ विराट चिन्तन है। राष्ट्रभाषा ही एक राष्ट्र की व्यवस्थित और सुनिश्चित विकास यात्र का अवलम्ब होती है। हिन्दी शब्द सामर्थ्य, साहित्य एवं सम्प्रेषणीयता की दृष्टि से अब एक वैश्विक भाषा है।

हिन्दी का उद्‌भव और विकास

डॉ. अनुज प्रताप सिंह* (डी. लिट्.)

परिचय और सीमा

हिन्दी शब्द को लेकर एक लम्बी बहस चल चुकी है। हमारे देश के अनेक नामों में एक सिन्धु भी है। ईरानी लोग सिन्धु नदी के प्रान्त सिन्ध को हिन्द तथा वहाँ के रहने वालों को हिन्दु या हिन्दू कहा करते थे, क्योंकि फारसी भाषा में 'स' ध्वनि का 'ह' हो जाता है। जब अरब वालों ने सिन्ध प्रदेश को विजित किया तो उन्होंने फारसी के हिन्दी शब्द को न अपनाकर इसको 'सिन्द' कहा। उस समय सिन्द प्रदेश हिन्द प्रदेश का कुछ हिस्सा था- जिस पर अरब वालों ने अधिकार किया था। इसी हिन्द मे हिन्दी पद बना- जिसका एक अर्थ है- हिन्द का रहनेवाला। डॉ. इकबाल ने भी अपने तराने में इसी अर्थ का उपयोग किया है- ''हिन्दी हैं हम वतन है, हिन्दोस्तां हमारा'' और दूसरा इसका अर्थ है- 'हिन्द की बोली।' अमीर खुसरो ने हिन्दू और हिन्दी में अन्तर किया है- उसका हिन्दी से आशय भारतीय मुसलमानों से है- ''बादशाह ने हिन्दुओं को तो हाथी से कुचलवा डाला; किन्तु मुसलमान, जो हिन्दी थे, सुरक्षित रहे।''[1] इतिहास के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि यह हिन्दी नाम मुस्लिम आक्रमणों के समय इस देश में भाषा के अर्थ में प्रचलित हुआ- जिसकी उत्पत्ति आज लोग अनेक प्राचीन भारतीय वाङ्मय से भी बताते हैं, पर अभी कोई निर्विवाद मत नहीं दे सका है। इस भाषा तथा इसकी जननी भाषा का केन्द्र हिमालय के दक्षिण तथा गंगा-यमुना और सिन्ध का प्रदेश रहा। यही आर्यों का सप्त-सैन्धव या आर्यावर्त है - इसी से आर्य समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने इसके स्थान पर आर्यभाषा नाम दिया। इसके अतिरिक्त भाषा के अर्थ में हिन्दी के अतिरिक्त ये नाम भी चलते रहे- हिन्दुई/हिन्दवी/हिन्दवी, दक्खिनी/दखनी या दकनी/हिन्दुस्थानी/हिन्दोस्तानी या हिन्दुस्तानी, खड़ी बोली, रेख्ता-रेख्ती और उर्दू आदि। इनका इतिहास भी हिन्दी के इतिहास में लिखा जाना भाषासंगत होगा। पहले भाषा से आशय बोली या बोलचाल की भाषा या वाणी से था। *'भाषा बोल न जानती'* केशव ने कहा है। *'का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहिए साँच'* कबीर ने कहा है। कहीं-कहीं भाषा या भाखापन का आशय गवारू या अपरिष्कृत बोली से है। इंशा अल्ला खाँ ने यही प्रयोग किया है। आज भी पुराने पण्डित या कथा-पुराण वाचक भाषा का आशय

*मीरा भवन, 1228/ए, वार्ड-9, राजा विजयपुर कोठी, सिविल लाइन, मीरजापुर, उत्तर प्रदेश-231001

बोलचाल की भाषा हिन्दी या असाहित्यिक, अप्रमाणित एवं सामान्य बोली से लगाते हैं। अनेक सम्प्रदायों में भाषा या हिन्दी में लिखित ग्रन्थों को दास वाणी और संस्कृत भाषा के ग्रन्थों को देववाणी, हुजूर वाणी या साहब वाणी भी कहते हैं। हिन्दी साहित्य के मध्यकाल में सन्त-समाज में यह भाखा पद खूब चला है। भाषा का अर्थ आज की हिन्दी की सारी बोलियों (लगभग 19) से है। आज तो हिन्दी शब्द का अर्थसंकोच होकर इसका अर्थ खड़ी बोली हो गया है - जबकि खड़ी बोली हिन्दी की एक बोली मात्र है। हिन्दी के लिए यह गौरव की बात है कि भारतवर्ष की राष्ट्र और राजभाषा खड़ी बोली ही है - जिसके महत्त्व के सम्बन्ध में भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343-351 में लिखा गया है। यह देश के सबसे अधिक भू-भाग में बोली, समझी तथा लिखी और पढ़ी जाती है। इसके वक्ता उत्तर में हिमालय और पर्यटक स्थली तथा तिब्बत के दक्षिण तक, दक्षिण में कन्याकुमारी, रामेश्वरम् अथवा लंका के उत्तर तक, पूरब में भागलपुर (पूर्वी बिहार), पश्चिम में सीमान्त से असम और जैसलमेर तक, उत्तर-पश्चिम में अम्बाला, उत्तर-पूर्व में शिमला से लेकर नेपाल की तराई तक, दक्षिण-पूर्व में रायपुर और दक्षिण-पश्चिम में खण्डवा बीच तक फैले हुए हैं। इसकी सीमा का रेखाचित्र इस प्रकार होगा-

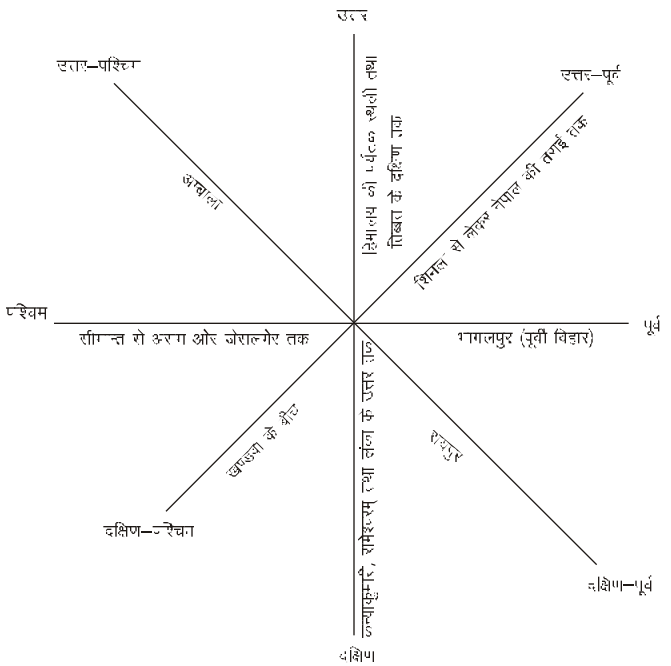

यही नहीं आज देश के सारे प्रान्तों तथा विदेशों के केन्द्रीय विश्वविद्यालयों और केन्द्रीय संस्थानों में भी इसका अधययन हो रहा है।

प्राय: भाषाशास्त्रियों ने पश्चिमी-पूर्वी हिन्दी के रूप में बाँटा है, पर इनको पाँच भागों में

बाँटकर विशेष सरलता से समझा जा सकता है।

1. **पूर्वी हिन्दी** - अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी।
2. **पश्चिमी हिन्दी** - व्रज, बाँगरू या जाटू, खड़ी बोली, कन्नौजी, बुन्देली।
3. **राजस्थानी** - मारवाड़ी, जयपुरी, मेवाती, मालवी (पश्चिमी हिन्दी से सम्बद्ध)
4. **बिहारी** - भोजपुरी, मैथिली (पूर्वी हिन्दी से सम्बद्ध)
5. **पहाड़ी** - नेपाली, कुमाउँनी, गढ़वाली, जौनसारी आदि। (पश्चिमी हिन्दी से सम्बद्ध)

लक्षण- सबसे पहला और सरल लक्षण है कि हिन्दी संस्कृत की तरह देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। यह अब वियोगात्मक भाषा है। इसकी ध्वनियाँ वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश और अवहट्‌ठ से होकर आयी हैं। इस लम्बी यात्र में इन पर विदेशी भाषाओं एवं बोलियों का भी प्रभाव पड़ता रहता है, परन्तु इसका सबसे निकट का सम्बन्ध संस्कृत से ही है। वैदिक ध्वनियाँ प्रायः इसमें सुरक्षित हैं- अ, इ, उ (ह्रस्व स्वर), आ, ई, ऊ, ए, ओ (दीर्घ स्वर), ऐ, औ (संयुक्त स्वर)। वैदिक संस्कृत में 'ओ' भी संयुक्त स्वर था। पाँचों वर्गों के व्यंजन क से म तक (25 अक्षर), अन्तस्थ, ऊष्म और अनुस्वार भी विद्यमान हैं। देश-काल एवं वातावरण के प्रभाव से ध्वनियों की उच्चारण प्रक्रिया में कतिपय अन्तर भी आता रहा, जैसे 'ऋ' पहले मूल स्वर था और अब 'रि' व्यंजनवत प्रयुक्त होने लगा है। 'ष' (मूर्धन्य) संघर्षी व्यंजन था, परन्तु अब यह 'श' या 'ख' की तरह उच्चरित होता है। कुछ ध्वनियाँ तो आज प्रायः लुप्त हो चुकी हैं, जैसे- ऌ, ॠ, .म, .न ये मूलतः स्वर थीं। विदेशी प्रभाव से अनेक विदेशी ध्वनियाँ जुड़ भी गयी हैं, जैसे- अंग्रेजी तत्सम पदों में प्रयुक्त दीर्घ ध्वनि 'ऑ' तथा फ़ारसी-अरबी में प्रयुक्त क़, ख़, ग़, ज़, फ़ ध्वनियाँ। हिन्दी की कुछ बोलियों में ह्रस्व 'ए' और ह्रस्व 'ओ' भी मिलती हैं। संस्कृत और प्राकृत की तरह हिन्दी के संज्ञा और क्रियापद अलग-अलग रहते हैं, राम (संज्ञा) जाता है (क्रियापद)। रूप-रचना की दृष्टि से हिन्दी में विभक्तियों (रामः गच्छति) का प्रायः लोप हो चुका है, क्योंकि यह वियोगात्मक भाषा है। इसमें संस्कृत के प्राकृत में ही द्विवचन रूप समाप्त हो चुके थे। द्विवचन न चलकर मात्र एकवचन और बहुवचन तथा नपुंसक लिंग न चलकर मात्र पुल्लिंग और स्त्रीलिंग ही चलते हैं। संस्कृत के उत्तम, मध्यम और अन्य ये तीनों पुरुष चलते हैं। नामिक पदों के दो रूप (1) विकारी (2) अविकारी तथा कभी-कभी तिर्यक रूप भी मिल जाते हैं। कारकीय परसर्ग प्रयुक्त होते हैं, जैसे- ने, को, से, के लिए, का, के, की, में, पै, पर, आदि। हिन्दी की विविध बोलियों में इनके विविध रूप प्राप्त होते हैं।

हिन्दी के लिंग और वचन विशेषण-विशेष्य के अनुसार तथा स्वतंत्र भी होते हैं, जैसे- काली गाय (अनुसार), सुन्दर वस्तु (स्वतंत्र)। हिन्दी के कुछ सार्वनामिक पदों में भी विभक्तियाँ मिल गयी

हैं और विभक्तियों के स्थान पर परसर्गों का प्रयोग होता है। सार्वनामिक पदों में प्राय: लिंग-भेद नहीं मिलता, जैसे- वह गया/वह गयी।

हिन्दी कर्तापद का अनुगमन क्रियापद के लिए अनिवार्य नहीं है, जैसे- पं. जवाहरलाल नेहरू स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री थे।

हिन्दी के क्रियापद संस्कृत की अपेक्षाकृत अत्यन्त सरल हैं। वहाँ तो एक धातु के 540 रूप तक बनते हैं। यहाँ गण विभाग भी नहीं है। कृदन्तों (धातुज) का विकास खूब हुआ है। सहायक क्रियापद प्राय: वियोगात्मक हैं। आज्ञा, सम्भावना, प्रेरणा और इच्छा आदि के लिए अलग-अलग पद हैं। संस्कृत के 10 लकारी रूपों की जटिलता और बहुलता यहाँ नहीं है।

हिन्दी वाक्य-रचना संस्कृत की तरह न होकर अपने ढंग की होती है। वाक्य-रचना में पदक्रम उद्देश्य+विधेय तथा आवश्यकतानुसार स्वतंत्र होते हैं।

हिन्दी के विशेषण पद प्राय: विशेषण के पूर्व या साथ आते हैं। कहीं-कहीं विशेषण में ही विशेष्य लीन हो जाते हैं, जैसे- वह चतुर है।

हिन्दी में स्वराघात प्राय: नहीं है, पर वाक्यान्त में सुर का महत्त्व है। इससे भाव परिवर्तन की सूचना मिलती है।

उद्‌भव

किसी भी भाषा का उद्‌भव आकस्मिक और अकारण नहीं, बल्कि क्रमश: और सकारण होता है। वह पहाड़ी और बरसाती नदी की तरह एकाएक उभड़कर शान्त नहीं हो जाता, बल्कि शरदकालीन मैदानी नदी की तरह एक स्थायी वारिधारा की तरह प्रवहमान रहता है। हिन्दी भाषा के उद्‌भव के सम्बन्ध में भी यही बात है। आज की हिन्दी ने एक लम्बे काल के साथ अपने को मिलाकर इस स्वरूप को प्राप्त किया है।

संसार की पुरानी भाषाओं में एक आर्यभाषा परिवार भी है। यहाँ के आर्य लोगों ने जिस भाषा में वेद-रचना सम्पन्न की वह भाषा उस समय की साहित्यिक भाषा थी जिसका सहज रूप जनता के भाव विनिमय का साधन था। भाषा का साहित्यिक, पुस्तकीय या शास्त्रीय रूप कुछ दिनों में आचार्यों या ऋषियों की मान्यताओं से स्थिर हो गया और सामान्य जन की भाषा बहता नीर की तरह स्वतंत्र रूप से चलती रही। इसमें शास्त्रीय भाषा के कुछ पद ज्यों-के-त्यों और कुछ परिवर्तित होकर चलते रहे। देश-काल एवं वातावरण का इस भाषा पर विशेष प्रभाव पड़ा जिससे इसके स्वरूप में विविध परिवर्तन शास्त्रीय भाषा की अपेक्षा अधिक तेजी से हुए और वह वैदिक काल की सहज भाषा आज हिन्दी तथा अन्य भाषाओं के रूप में विद्यमान है।

भाषा का स्वरूप जो शास्त्रीय मान्यताओं से बँधा गया - वह संस्कृत (संस्कारित) कहलाया। जो वैदिक संस्कृत और लौकिक के नाम से जाना जाता है। इसके अन्तिम नियन्ता महर्षि पाणिनि (पाँच सौ ई. पूर्व) हैं। इसी संस्कृत के साथ भाषा का सहज या प्राकृत रूप भी चलता रहा-जब पाणिनि के नियंत्रण से संस्कृत भाषा का स्वरूप स्थिर हो गया, तो प्राकृत भाषा को विकसित होने का अवसर प्रकृत्या अधिक मिला, क्योंकि पाणिनि सबके लिए गम्य नहीं हो सके और बिना पाणिनि को समझे संस्कृत को समझना कठिन ही नहीं असम्भव हो गया। फलतः उसका एक स्वरूप ही रह गया; परन्तु कोई भी कवि या भाषाविद् समसामयिक भाषा-आन्दोलन से अछूता नहीं रह सकता है, यदि रहता है तो उसको जिन्दा रहते ही मृत समझ लेना चाहिए। फलतः लौकिक संस्कृत के अनेक विद्वानों ने अपनी रचनाओं में प्राकृत भाषा को भी स्थान दिये, स्त्रियों, दासों तथा मध्यम और सामान्य पात्रें की भाषा प्राकृत रखे। यह कार्य संस्कृत के नाटकों में विशेष रूप से हुआ।

ऐसे भाषा-संक्रमण के समय ही गौतम बुद्ध का आविर्भाव हुआ - जिन्होंने अपने धर्म का प्रचार-प्रसार जनता की भाषा मागधी में किया-जो पूर्वी भारत की प्रमुख जनभाषा रही। इससे जनभाषा को बड़ा बल मिला और धर्म तथा तंत्र की अभिव्यक्ति के लिए भी जनभाषा को सक्षम माना जाने लगा। बुद्ध ने स्वयं अपने ग्रन्थों की भाषा मागधी या पालि ही रखी। शौरसेनी प्राकृत का विकास भी पालिकालीन मथुरा की बोली से हुआ जो आज की हिन्दी की जननी है। यह शौरसेनी अश्वघोषकृत 'सारिपुत्रप्रकरण' में मिलती है। प्राकृतों में शौरसेनी के बाद महाराष्ट्र का नाम आता है। ईस्वी सन् के प्रारम्भ से कई वर्षों तक साहित्यिक भाषा के रूप में विद्यमान रही। इसमें अनेक सम्मानित रचनाएँ सम्पन्न हुई; जैसे- हालकृत 'गाथा सप्तशती' (गाहा सतसई) और प्रवरसेन कृत 'सेतुबन्ध' (रावण वहो) महाराष्ट्री प्राकृत कोई अलग भाषा नहीं, बल्कि शौरसेनी का ही अन्तिम रूप है- ''परिवर्तन की प्रथम स्थिति में वर्तमान भाषा को उन्होंने 'शौरसेनी' तथा अन्तिम स्थिति में वर्तमान भाषा को 'महाराष्ट्री' संज्ञा दी। परन्तु वास्तव में शौरसेनी एवं महाराष्ट्र एक ही भाषा के आगे-पीछे के रूप हैं।''[2] अन्त में ''प्राकृत शब्द जैन-आगमों की 'आर्षी' अथवा 'अर्धमागधी' तथा अन्य साहित्यिक रचनाओं की 'मागधी', 'शौरसेनी', 'महाराष्ट्री' तथा 'पैशाची' बोलियों के अर्थ में रूढ़ हो गया।''[3] प्राकृत के प्रथम व्याकरणकार वररुचि ने इसके चार भेद किये- (1) महाराष्ट्री, (2) पैशाची, (3) मागधी, (4) शौरसेनी। आचार्य हेमचन्द्र (12वीं शताब्दी) ने 'आर्षी' (अर्धमागधी) एवं शूलिका पैशाची पर भी विधिवत विचार किया है। अर्धमागधी काशी और कोसल प्रदेश की भाषा थी। महाराष्ट्री-साहित्यिक प्राकृतों में बहुत अधिक विकसित है। इसको कुछ लोगों ने आदर्श प्राकृत भी कहा है। संस्कृत नाटकों में प्राकृत पद्य-रचना इसी में ही हुई है। आधुनिक मराठी का पूर्व रूप इसमें सुरक्षित है। पैशाची प्राकृत का साहित्य सुरक्षित नहीं है। गुणाढ्य की वृहत्कथा (बड्डकहा) मूलतः इसी में ही लिखी गयी थी। इन प्राकृतों का संस्कृत नाटककारों ने 13वीं सदी तक प्रयोग किया है। ''प्राकृत की अन्तिम अपभ्रंश अवस्था से ही हिन्दी साहित्य का आविर्भाव माना जा सकता है।

अपभ्रंश या प्राकृताभास हिन्दी के पद्यों का सबसे पुराना पता तांत्रिक और योगमार्गीबौद्धों की साम्प्रदायिक रचनाओं के भीतर विक्रम की सातवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में लगता है।''[4]

विकास

हिन्दी के विकास-क्रम को यदि हम तीन भागों में बाँटकर चर्चा करें तो अधिक सुगम होगा। उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो चुका है कि वैदिक काल से चली आती हुई जनभाषा ही आज की हिन्दी और पालि, प्राकृत, अपभ्रंश तथा अवहट्ठ भाषाएँ भी पुरानी हिन्दी ही है। इस प्रसंग में प्राचीन हिन्दी काव्यधारा की भूमिका में प्रतिपादित महापण्डित राहुल सांकृत्यायन का मत मुझको मान्य है और हिन्दी की विकास-परम्परा के प्रथम चरण में हम उसी पुरानी हिन्दी की ही चर्चा करेंगे-

प्रथम चरण

यह चरण विक्रम की सातवीं शताब्दी के अन्तिम भाग से प्रारम्भ होता है- जिसको महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने सिद्ध-सामन्त युग कहा है। यही हिन्दी का आदिकाल, वीरगाथाकाल, चारणकाल और अपभ्रंशकाल कहा गया है-जिनमें साहित्यिक प्रवृत्ति के हिसाब से राहुल जी का नामकरण और भाषा की दृष्टि से अपभ्रंशकाल अधिक संगत जान पड़ता है।

मध्य भारतीय आर्यभाषा का अन्तिम चरण 'अपभ्रंश' नाम से जाना जाता है। यह मध्य और आधुनिक आर्य भाषाओं (हिन्दी, बंगला, मराठी, गुजराती) के मध्य की संयोजिका है। महाभाष्यकार पतंजलि ने लिखा है- *''भायांसो ऽपशब्दा:, अल्पीयांस: शब्दा इति। एकैकस्य हि शब्दस्य वहवोऽपभ्रंशा:।''*[5] अर्थात् अपशब्द बहुत हैं, शब्द अल्प हैं। एक-एक शब्द के बहुत से अपभ्रंश हैं। यहाँ अपाणनीय या असाधु शब्द के अर्थ में अपभ्रंश शब्द का प्रयोग हुआ है।

ईसा की छठवीं शताब्दी में प्राकृत वैयाकरण चण्ड ने अपने ग्रन्थ 'प्राकृत लक्षणम्' (3-37) में अपभ्रंश शब्द का प्रयोग भाषा के अर्थ में किया है। उस समय के शिलालेखों में भी भाषा के अर्थ में इसका प्रयोग मिलता है। भामह ने अपने ग्रन्थ 'काव्यालंकार' में भाषा के अर्थ में इसको लिखा है- *''संस्कृतं प्राकृतं चान्यदपभ्रंश इति त्रिधा''* (1-26)। आचार्य दण्डी ने भी *''आभीरादिगिर:''* (काव्यादर्श) सूत्र में इसको भाषा के अर्थ में प्रयुक्त किया है। नौवीं शताब्दी में आचार्य रुद्रट ने इसका भाषा के अर्थ में उल्लेख तथा इसके अनेक भेदों की चर्चा की है। ग्यारहवीं शताब्दी में वैयाकरणिक पुरुषोत्तम ने इसको उच्च वर्ग की भाषा स्वीकार किया है। बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हेमचन्द्र ने इसका सांगोपांग व्याकरण लिखा। इस प्रकार इसका प्रारम्भ ईसा पूर्व द्वितीय शती मानना चाहिए जिसका क्रम निम्नवत है- अपशब्द (अपाणिनीय) →लोकभाषा →शिष्ट या साहित्यिक भाषा। यह उकार तथा द्वित्व बहुला भाषा है। कालिदास के 'विक्रमोर्वशीय' नाटक के चौथे अंक में इसके कुछ पद्य प्राप्त हो जाते हैं जिनकी प्रामाणिकता के सम्बन्ध में विवाद है। इसके निम्न भेद

हैं-(1) उपनागर, (2) अभीर, (3) ग्राम्य। परवर्ती वैयाकरणों ने (1) नागर, (2) उपनागर, (3) ब्राचड भेद किये हैं तथा सत्रहवीं शती में मार्कण्डेय ने इसके 27 भेद बताये हैं।

हिन्दी के प्रथम चरण में जो भी रचनाएँ आज प्राप्त हैं, सब पर साहित्यिक या शौरसेनी अपभ्रंश का प्रभाव है। इस संक्रान्तिकालीन भाषा और साहित्य के उदाहरण के लिए अधोलिखित रचनाएँ द्रष्टव्य हैं- (1) **'संनेहय-रासय'** (संदेश रासक)- कवि अद्दहमाण (अब्दुल रहमान)। यह रचना अपभ्रंश और आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के बीच की कड़ी है। इसकी भाषा में पश्चिमी हिन्दी, गुजराती और राजस्थानी के बीज द्रष्टव्य हैं। (2) **'प्राकृत पैंगलम'** (सम्पादक-प्रो. भोला शङ्कर व्यास), यह छन्दशास्त्र का ग्रन्थ है। छन्दों के स्वरूप और उदाहरण इसमें संकलित हैं। डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी का कथन है कि इसमें नवीं से चौदहवीं शती तक के पद संकलित हैं। दो पद राजशेखर की 'कर्पूरमंजरी' (प्राकृत) के भी हैं। इसमें साहित्यिक अपभ्रंश के पद अधिक हैं। (3) **पुरातन प्रबन्ध संग्रह**- यह प्राचीन जनश्रुतियों का संग्रह है। (4) **उक्तिव्यक्ति प्रकरण**- इसके रचनाकार गहरवार राजपूतों में महान दानी कन्नौज और काशी के राजा गोविन्द चन्द के सभापण्डित पं. दामोदर जी हैं। इसमें प्राचीन अवधी के स्वरूप प्राप्त हो जाते हैं। (5) **वर्ण रत्नाकर** – इसके रचनाकार कवि शेखराचार्य ज्योतिरीश्वर ठाकुर हैं। उनका समय चौदहवीं शताब्दी के प्रथम चरण का पूर्वार्द्ध है। इसमें मैथिली का प्राचीन रूप विद्यमान है, इस समय तक हिन्दी की बोलियों का विभाजन नहीं हो सका था। बंगला, मगही, भोजपुरी और अवधी के तत्त्व भी इसमें विद्यमान हैं। (6) **कीर्तिलता**- इसके रचनाकार मैथिली कोकिल कवि विद्यापति जी हैं जिनका समय अनेक विवादों के साथ 14वीं शताब्दी का अन्त और 15वीं शताब्दी का प्रारम्भ स्थिर हो सका है। उन्होंने इसकी भाषा को 'देसिल बयना' या 'अवहट्‌ठ' कहा है जो साहित्यिक अपभ्रंश मिश्रित लोकभाषा है। इस पर तत्कालीन पूर्वी भाषाओं का भी कुछ प्रभाव है। (7) **चर्यापद**- इसमें बंगला का प्राचीन रूप प्राप्त होता है। ये रचनाएँ सहजिया सम्प्रदाय के सिद्धान्तों की हैं। इनके पदों की संख्या 47 है। इसका समय महामहोपाध्याय पं. हरप्रसाद शास्त्री के अनुसार 12वीं और राखालदास बनर्जी के अनुसार 14वीं शती है। (8) **ज्ञानेश्वरी**- यह 'श्रीमद्‌भगवद्‌गीता' पर सन्त ज्ञानेश्वर की लोकभाषा में लिखी टीका का नाम है। इसका समय 13वीं शती है। इसकी भाषा में आधुनिक मराठी का मूल रूप मिलता है।

इनके अतिरिक्त 7वीं-15वीं शती तक की जैनी, सिद्धों, नाथों तथा रासो काव्यों और चरित कथाओं को देखा जा सकता है।

हर्ष के पश्चात् इस देश में कोई ऐसा प्रतापी राजा नहीं हुआ जो पूरे देश को अपने अधीन रख सके। फलतः उनके बाद से ही देश पर छिटपुट आक्रमण होने लगते हैं। इसी बीच पृथ्वीराज की कमजोरियों तथा बौद्धों और जैनियों के आन्तरिक कुचक्रों से इस देश से हिन्दू साम्राज्य सदैव के लिए मिट गया। 13वीं शताब्दी तक मुसलमान बंगाल तक फैल गये। इन लोगों ने अपनी भाषा फारसी

को महत्त्व दिया जिसके कारण समसामयिक हिन्दी भाषा पर इसका खूब प्रभाव पड़ा। इसी समय (1225-1325 ई.) इसका हिन्दवी रूप अमीर खुसरो के साहित्य में दिखाई पड़ता है। खुसरो ने अपने ग्रन्थ 'नूह सिपहर' में लिखा है- ''मैं फ़ारसी के साथ हिन्दवी भी जानता हूँ।'' हिन्दवी= दिल्ली, आगरे के पास की तत्कालीन खड़ी बोली। भाषा-रचना-विधान को देखते हुए खुसरो की भाषा के दो भाग किये जा सकते हैं- (1) वह हिन्दी जो खड़ी बोली के रूप में सामने आयी। इसमें उन्होंने पहेलियों, मुकरियों और सुखनों की रचना की है। (2) गीतों की भाषा है। इनके अतिरिक्त डिंगल और पिंगल नाम से हिन्दी के दो रूप मिलते हैं। डिंगल= राजस्थानी भाषा का साहित्यिक रूप, जिसमें चारण साहित्य या रासो काव्य रचे गये। पिंगल= पुरानी व्रजभाषा+पंजाबी+मथुरा की व्रजभाषा। इनके अतिरिक्त तत्कालीन जैन सिद्ध तथा नाथों के साम्प्रदायिक साहित्य, शिलालेख, ताम्रपत्र, दानपत्र और विविध राजकीय बहीखातों आदि में भाषा के विविध स्वरूप दिखाई पड़ते हैं। तत्कालीन बोलचाल की भाषा का उदाहरण नहीं मिल सका है। सिद्धों की भाषा अपभ्रंश मिश्रित लोकभाषा के रूप में अवश्य द्रष्टव्य हैं। इनके ग्रन्थ 'चर्यागीत' और 'दोहाकोश' नाम से संग्रहीत हैं। नाथपन्थियों की भाषा पुरानी पश्चिमी हिन्दी तथा जनभाषा का मिला रूप है। इनकी भाषा जनभाषा/सहज भाषा है। जिसको देश के अधिकांश भाग से उन लोगों ने लिया था। उन्हीं की भाषा का अनुकरण-अनुसरण आगे चलकर कबीर आदि सन्तों ने किया।

जब मुहम्मद तुगलक ने (1326 ई.) दक्षिणी विजय के साथ-साथ राजधानी-परिवर्तन किया तो दिल्ली की जनता के साथ-साथ वहाँ की भाषा (खड़ी बोली) भी दक्षिण में फैल गयी। इस हिन्दी पर फारसी-अरबी का खूब प्रभाव पड़ा। यही भाषा आगे चलकर दक्खिनी हिन्दी के नाम से प्रसिद्ध हुई। 1398-99 ई. में तैमूरी (तैमूरलंग) आक्रमण ने पूरे देश को अव्यवस्थित कर दिया। उसके सिपाही प्रायः बस गये जो हिन्दी में फारसी-अरबी भाषाओं के तत्त्व मिलाते रहे। इस तरह की मिश्रित भाषा के कई लेखक भी हुए हैं। व्रजभाषा और खड़ी बोली के स्वरूप में मेलजोल अधिक हुआ। विद्यापति के समय तक यह कार्य चलता रहा तथा हिन्दी भाषा प्रयोग के विविध सोपानों से यात्रा तय करती रही। यह काल आधुनिक हिन्दी के लिए प्रसवकाल था जिसमें यह पैदा होकर अपने स्वरूप को निर्मित कर सकी। इस प्रथम चरण की हिन्दी की प्रमुख विशेषताएँ निम्नवत हैं- अपभ्रंश में केवल 8 स्वर 'अ', 'आ', 'इ', 'ई', 'उ', 'ऊ', 'ए', 'ओ' थे। इस काल में 'ऐ', 'औ' दो नये स्वर विकसित हुए। अपभ्रंश में 'च', 'छ', 'ज', 'झ' स्पर्श व्यंजन थे। इसी काल में ये स्पर्श संघर्षी हुए जो आज तक बने हुए हैं। अपभ्रंश में 'त', 'र', 'ल', 'स' दन्त्य थे, हिन्दी में वर्त्स्य हो गये। अपभ्रंश के अतिरिक्त हिन्दी में दो 'ड़', 'ढ़' नये व्यंजन विकसित हुए। 'न्ह', 'म्ह', 'ल्ह' अपभ्रंश में ये संयुक्त व्यंजन रहे, जो इस समय क्रमशः न, म, ल के महाप्राण के रूप में हो गये। उक्त ध्वन्यात्मक परिवर्तन के साथ-साथ व्याकरणिक परिवर्तन भी हुए। अपभ्रंश की प्रकृति संस्कृत की तरह संयोगात्मक ही है, परन्तु आज की हिन्दी ज्यों-ज्यों विकास करती गयी त्यों-त्यों वियोगात्मक

होती गयी। इसके सहायक क्रियापद और परसर्ग अलग प्रयुक्त होने लगे। अपभ्रंश में नपुंसकलिंग का प्रयोग मिल जाता है, पर हिन्दी में पूर्ण रूप से समाप्त हो गया। काव्य-रचना में पद-क्रम अपभ्रंश की अपेक्षा इसमें स्थिर हो गये।

द्वितीय चरण (1500-1857 ई.)

यह काल हिन्दी साहित्य का स्वर्णकाल, मध्यकाल और भक्ति और भक्तिश्रृंगारकाल नाम से जाना जाता है। इस काल में हिन्दी को पूर्ण विकास करने का अवसर प्राप्त हुआ। राजसत्ता से दूर रहकर सन्तों और भक्तों ने जो इसके प्रथम भाग को सम्पन्न किये वह सदैव उल्लेखनीय रहेगा। इस अवधि में हिन्दी की तीन प्रमुख बोलियों- (1) व्रज, (2) अवधी, और (3) खड़ी बोली का विकास हुआ। व्रज और अवधी का यह चरम विकास का काल रहा। यही इनका साहित्यिक रूप है। खड़ी बोली व्यवहार में विशेष रूप से प्रचलित रही।

सन्तों की भाषा पर सिद्धों की भाषा का विशेष प्रभाव दिखाई पड़ता है। इनकी भाषा देश के विविध जनपदों की मिलावट लिये हुए है। ये सन्त राजस्थान से पूर्वी बिहार तक फैले हुए थे। कबीर ने तो भाषा सम्बन्धी सबसे बड़ी क्रान्ति की। इन सन्तों की भाषा में व्रज, अवधी, पंजाबी, राजस्थानी और भोजपुरी का मिश्रण विशेष रूप से दिखाई पड़ता है। बाबू श्यामसुन्दर दास ने इनकी (कबीर की विशेष रूप से) भाषा को पंचमेल खिचड़ी और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सन्ध्या भाषा (अस्पष्ट भाषा) और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने सहज भाषा कहा है। द्विवेदी जी का मत मुझको भी मान्य है। इन सन्तों की भाषा अवश्य सहज थी जो देश की जनता के अधिकांश भाग को अपनी ओर आकर्षित कर सकी थी। 1. निर्गुण ज्ञानाश्रयी सन्त, 2. सूफी सन्त, 3. कृष्णाश्रयी, 4. रामाश्रयी। कृष्ण भक्तों में अधिकांश लोगों ने व्रजभाषा के साहित्यिक रूप को अपनाया तो रामभक्तों और सूफियों ने अवधी को, क्योंकि कृष्ण की जन्मभूमि व्रज प्रदेश थी और राम की अवध थी। दोनों वर्गों ने भाषा और साहित्य को खूब विकसित किये। फलतः व्रजभाषा में सूरदास का 'सूरसागर', नन्ददास का 'रासपंचाध्यायी' और तुलसीदास की 'विनय पत्रिका' जैसे काव्य रचे गये और अवधी में 'पद्मावत' (ठेठ अवधी) और 'रामचरितमानस' (साहित्यिक अवधी)। इस हिन्दी के विकास के द्वितीय चरण के उत्तर पक्ष को रीतिकाल के नाम मे भी जाना जाता है। इस काल में व्रजभाषा का विशेष विकास हुआ। इस भाषा के माध्यम से कवियों ने संस्कृत साहित्य के रीतिशास्त्र एवं काव्य को हिन्दी में निरूपित किये। जहाँ भक्ति काल में भाषा भाव पक्ष से सम्पन्न थी, वहीं इस काल में कला पक्ष से सम्पन्न हुई। इस रीतिकाल में हिन्दी की तीन धाराएँ प्रवाहित हुई- (1) रीतिबद्ध (आचार्य कवि, लक्षण-लक्ष्य निरूपक), (2) रीतिसिद्ध (काव्य कवि या लक्षण कवि), (3) रीतिमुक्त।

इन पर संस्कृत और फारसी साहित्य का समान प्रभाव दिखाई पड़ता है। चमत्कार प्रधान भाषा

अधिक मिलती है। रीतिमुक्त धारा के कवियों में भावपक्ष और राष्ट्रीय प्रेम का प्राबल्य है। रीतिबद्ध और सिद्ध तो प्राय: दरबारी कवि रहे। इस काल (1500-1857 ई.) की भाषा की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं- अरबी-फारसी की नुक़्तेवाली क़, ख़, ग़, ज़, फ़ पाँच ध्वनियाँ हिन्दी में आ गयीं। शब्दान्त का स्वर 'अ' व्यंजन के बाद आने पर लुप्त होने लगा, जैसे- राम=राम्, धाम=धाम्, काम=काम्। यहाँ तक आते-आते हिन्दी पूर्ण रूप से अपने पैरों पर खड़ी हो गयी। अपभ्रंश के प्रभाव भी समाप्त हो गये। जो अपने प्रथम चरण 7-15वीं शताब्दी तक पूर्ण रूप से वियोगात्मक नहीं हो सकी थी- वह इस काल में प्राय: हो गयी और परसर्गों तथा सहायक क्रियापदों के प्रयोग बढ़ गये। शब्द-सम्पदा में भी पर्याप्त अभिवृद्धि हुई। अरबी, फारसी, तुर्की, पश्तो, पुर्तगाली, जर्मनी, फ्रांसीसी, अंग्रेजी भाषाओं के अनेक विदेशी शब्द व्यवहृत होने लगे। कुल मिलाकर इस काल में हिन्दी हर तरह से सम्पन्न हुई।

तृतीय चरण

इसका काल 1857 ई. के गदर से आज तक समझना चाहिए। इस काल की हिन्दी को सबसे बड़ी देन है कि जो स्थान हिन्दी विकास के द्वितीय चरण में व्रजभाषा और अवधी को मिला था वही इसमें खड़ी बोली को प्राप्त हुआ। आज व्रज और अवधी बोलियों के रचनाकार नाम मात्र के ही हैं। इसके साथ-साथ भाषा का गद्य रूप भी सामने आया और आज की हिन्दी गद्य प्रधान है।

अंग्रेजों के पूर्व भारत में पुर्तगाली, फ्रांसीसी और डच आदि आये, परन्तु प्रभावशाली अंग्रेज ही रहे। 1857 ई. के गदर के बाद तो यह देश पूर्ण रूप से अंग्रेजी सरकार द्वारा संचालित होने लगा। एक स्थायी शासन की नींव पड़ने लगी और अंग्रेज ऐसा वातावरण बनाने लगे जिससे वे यहाँ अनन्तकाल तक रह सकें। अंग्रेजों ने दिल्ली के आसपास की हिन्दी खड़ी बोली को जनसामान्य की भाषा मानकर उसको बढ़ावा दिया। ईसाइयत तथा हिन्दू धर्म की अनेक किताबें इसी बोली में छपीं। प्रेस के आविष्कार ने भाषा-विकास में बड़ी सहायता की। इन्हीं की कृपा से 1800 ई. में कलकत्ते में फोर्टविलियम कॉलेज की स्थापना हुई। खड़ी बोली गद्य के प्रयोग को वरीयता दी गयी। 'प्रेम सागर' (लल्लू लाल जी), 'नासिकेतापाख्यान' (सदल मिश्र), 'रानी केतकी की कहानी' (इंसा अल्ला खाँ, यह हिन्दवी भाषा में है) आदि गद्य रचनाएँ सामने आयीं। मुसलमानों के सहयोग और अंग्रेजों की कृपा से कार्यालयों की भाषा उर्दू स्वीकृत हुई। इसी काल में भारतेन्दु मण्डल ने हिन्दी के विकास के लिए बहुत बड़ा कार्य किया। तत्कालीन समाज सुधारक संस्थाओं ब्रह्म समाज, आर्य समाज और कांग्रेस पार्टी ने हिन्दी को स्थान दिया। आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 1875 ई. में कहा कि खड़ी बोली हिन्दी को इस देश की राष्ट्रभाषा होना चाहिए। कांग्रेस पार्टी के अधिकतर कार्य इसी भाषा में ही सम्पन्न होते रहे। यह राष्ट्रीय जागरण का काल रहा है। हिन्दी की खड़ी बोली को राष्ट्रवादियों द्वारा बड़ा बल मिला।

भारतेन्दु के बाद हिन्दी को पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी का नेतृत्व मिला। इन्होंने 'सरस्वती' पत्रिका के सम्पादन कार्य के माध्यम से हिन्दी का परिष्कार किया। यह खड़ी बोली का परिष्कार काल रहा। न जाने कितने लोग 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से शुद्ध हिन्दी बोलना, पढ़ना और लिखना जान सके।

स्वतंत्रा प्राप्ति के बाद इसी खड़ी बोली को राष्ट्रभाषा और राजभाषा का पद मिला। भारतीय संविधान के चरितार्थ होने की तिथि 26 जनवरी 1950 ई. से 15 वर्ष यानी 26 जनवरी 1965 ई. तक अंग्रेजी को ही राजभाषा पद पर बने रहने के लिए लोगों ने सुझाव दिया। इसी काल में एक विधेयक के द्वारा अहिन्दीभाषी प्रान्तों, मुख्य रूप से तमिलनाडु और बंगाल द्वारा इसका विरोध हुआ जिससे अंग्रेजी को वरीयता मिली। वह हिन्दी की अनिवार्य सहचरी बना ली गयी। परिणाम यह हुआ कि आज भी व्यावहारिक रूप से अंग्रेजी ही देश की राजभाषा है। यह हिन्दी के लिए दु:ख की बात है। अंग्रेजी का सम्बन्ध किसी भी भारतीय भाषा-परिवार से नहीं है। अत: उसको यहाँ की राजभाषा होने का कतई अधिकार नहीं है। आज की हिन्दी बहुत आगे बढ़ चुकी है, दिनों-दिन इसका विकास होता जा रहा है। आज का अधिकांश साहित्य इसी के माध्यम से सामने आ रहा है। देश के प्राय: लोग इसको समझने, बोलने और लिखने वाले हैं।

द्विवेदी जी ने जहाँ हिन्दी को परिष्कृत किया, वहीं नियंत्रित भी किया। परिणाम यह हुआ कि अनेक लोगों ने उनके भाषिक अंकुश का विरोध करते हुए साहित्य-रचना प्रारम्भ किये। इस कार्य में छायावादी साहित्यकार सबसे आगे रहे। इन लोगों ने भाषा में विविध प्रयोग किये, परिणाम यह हुआ कि भाषा अलंकृत पर बंकिम हो गयी। इनकी लाक्षणिकता और व्यंजनात्मकता सबके समझ की चीज नहीं रह गयी।

छायावाद के बाद प्रगति और प्रयोगवाद आये। इनमें भाषा की दिशा बदली; छायावादी लाक्षणिकता और कल्पनात्मकता ने यथार्थ का रूप धारण किया। अंग्रेजी, बंगला और रूसी साहित्य ने विशेष रूप से प्रभावित किया। परिणामत: भाषा की अनेक नयी विशेषताएँ सामने आयीं। हिन्दी के तृतीय चरण की विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

1947 ई. के पहले फारसी के नुक्तों क़, ख़, ग़, ज़, फ़ का खूब प्रचलन रहा, पर अब नाम मात्र का ही है। अंग्रेजी का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। अंग्रेजी के अनेक मूल पद हिन्दीवत प्रयुक्त होने लगे हैं, जैसे- स्लीपरों, रेलें, फर्नीचरों, आफिसों/आफिसें आदि। इसके साथ 'ऑ' एक नयी ध्वनि आ गयी है; जैसे- डॉक्टर, कॉलेज, ऑफिस आदि। 'ड्र' और 'ट्र' व्यंजन भी अंग्रेजी के प्रभाव से आये हैं। ऐ, औ क्रमश: संस्कृत के अइ/अउ से हो गये। शब्दान्त 'अ' ध्वनि कहीं-कहीं लुप्त हो गयी और 'आ' आ गयी, जैसे- राम=राम् और शुक्ल= शुक्ला, अशोक=अशोका, महेन्द्र=महेन्द्रा आदि।

आज के हिन्दी व्याकरण पर भी अंग्रेजी का सबसे अधिक प्रभाव है। रूप-रचना से लेकर वाक्य-रचना तक अंग्रेजियत से प्रभावित है। अंग्रेजी के अनेक मुहावरे और लोकोक्तियाँ भी हिन्दी में भाषान्तरित होकर प्रयुक्त होने लगी हैं। हिन्दी का पूर्ण विराम '।' का स्थान अंग्रेजी का पूर्ण विराम '.' लेता जा रहा है। इस सम्बन्ध में पत्रकारिता विभाग सबसे आगे है। उद्देश्य-विधेय सभी स्वतंत्र होते जा रहे हैं। आज की हिन्दी पूर्वलिखित व्याकरणों या निर्देशों के आधार पर लिखी, पढ़ी या बोली नहीं जा रही है, बल्कि बहुत हद तक स्वतंत्र हो चुकी है। आज हिन्दी को एक नये मानक व्याकरण की आवश्यकता है। आज हिन्दी का कोई ऐसा व्याकरण नहीं है जिसमें इसकी लगभग 19 बोलियों की भाषिक संरचना की बात उल्लिखित हो। आज इतने बड़े देश के भाषिक नियंत्रण के लिए इसके पास शब्दावली का भी अभाव है- इस हेतु इसको विदेशी और देशी शब्दों के ग्रहण के साथ कुछ शब्दों का निर्माण भी करना होगा। आज जो शब्दावली इसके पास है; (लगभग इसकी दुगुनी होनी चाहिए)। सब मिलाकर हिन्दी का भविष्य उज्ज्वल है।

सन्दर्भ-

1. "Whatever live Hindu fell into the King's hands was founded into bits under the feet of elephants. The Musalmans who were Hindis (country born) hand their lives spared." - Amir Khosru, in Elliod III 539; Hobson-Jobson p. 315
2. हिन्दी भाषा का उद्‌गम और विकास : डॉ. उदय नारायण तिवारी, संस्करण-4, 1975 ई., पृ. 117
3. हिन्दी भाषा का उद्‌गम और विकास : डॉ. उदय नारायण तिवारी, संस्करण-4, 1975 ई., पृ. 118
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ. 3, ना.प्र.सभा, काशी संस्करण 30
5. प्राप्ति स्थान- 'हिन्दी भाषा का उद्‌गम और विकास : डॉ. उदय नारायण तिवारी, संस्करण-4, 1975 ई., पृ. 124; भारती भण्डार लीडर प्रेस, इलाहाबाद

भारत के कार्यालयों में हिन्दी के प्रयोग की विकास यात्रा

डॉ. योगेन्द्र प्रताप सिंह*

आजादी मिलने के बाद सन् 1946 ई. में राष्ट्रीय कांग्रेस, मुस्लिम लीग के सदस्यों तथा कुछ अन्य स्वतंत्र व्यक्तियों को मिलाकर संविधान सभा का गठन किया गया। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में गठित इस संविधान सभा की नियम समिति ने प्रारम्भिक दिनों में यह निर्णय ले लिया कि सभा के कामकाज की भाषा हिन्दुस्तानी या अंग्रेजी होगी, पर यह भी विकल्प रखा गया कि कोई भी सदस्य अध्यक्ष की अनुमति से अपनी मातृभाषा में भाषण दे सकेगा। 14 जुलाई 1947 ई. को संविधान सभा के चौथे सत्र के दूसरे दिन ही कामकाज की भाषा 'हिन्दुस्तानी' के नाम परिवर्तन का निर्णय लिया गया। इस सम्बन्ध में यह संशोधन प्रस्तुत किया गया कि संविधान में हिन्दुस्तानी के स्थान पर इस भाषा के लिए हिन्दी शब्द रखा जाए। इस विषय पर हुए मतदान में हिन्दी शब्द के पक्ष में 63 वोट पड़े थे और हिन्दुस्तानी के पक्ष में 32 और इसी प्रकार देवनागरी के सन्दर्भ में हुए मतदान के पक्ष में 63 और विपक्ष में 18 वोट पड़े। फरवरी 1948 में प्रस्तुत किये गये संविधान के प्रारूप में केवल इतना ही उल्लेख था कि संसद की भाषा अंग्रेजी या हिन्दी होगी। 19 नवम्बर 1948 ई. को अनेक वाद-विवादों के बाद देश के स्वातंत्र्य समर को मुखरित करने वाली राष्ट्रभाषा हिन्दी भारत के संविधान में स्थान पा सकी और देश की राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठित होने का गौरव पा सकी। अन्ततः भारतीय संविधान के निर्माताओं ने 343 से 351 अनुच्छेद तक हिन्दी के लिए उपबन्ध निर्धारित किये।

1952 में शिक्षा मंत्रालय द्वारा हिन्दी भाषा का प्रशिक्षण ऐच्छिक तौर पर प्रारम्भ किया गया। जुलाई, 1955 में हिन्दी शिक्षण योजना की स्थापना की गयी जिसके अन्तर्गत केन्द्र सरकार के मंत्रालयों, विभागों, सम्बद्ध व अधीनस्थ कर्मचारियों को सेवाकालीन प्रशिक्षण प्रदान करना तय किया गया। अक्तूबर, 1955 में गृह मंत्रालय के अन्तर्गत हिन्दी शिक्षण योजना प्रारम्भ की गयी। 3 दिसम्बर, 1955 को संविधान के अनुच्छेद 343/2 के परन्तुक द्वारा दी गयी शक्तियों का प्रयोग करते हुए संघ के कुछ कार्यों के लिए अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त हिन्दी भाषा का प्रयोग किये जाने के आदेश जारी

*प्रोफेसर हिन्दी विभाग, इलाहाबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश

किये गये। 1960 ई. में हिन्दी टंकण, हिन्दी आशुलिपि का अनिवार्य प्रशिक्षण आरम्भ किया गया। 27 अप्रैल, 1960 को संसदीय समिति की रिपोर्ट पर राष्ट्रपति के आदेश जारी किये गये जिनमें हिन्दी शब्दावलियों का निर्माण, संहिताओं व कार्यविधिक साहित्य का हिन्दी अनुवाद, कर्मचारियों को हिन्दी का प्रशिक्षण, हिन्दी प्रचार, विधेयकों की भाषा, उच्चतम न्यायालय व उच्च न्यायालयों की भाषा आदि मुद्दे हैं। 10 मई, 1963 को अनुच्छेद 343/3 के प्रावधान व श्री जवाहर लाल नेहरू के आश्वासन को ध्यान में रखते हुए राजभाषा अधिनियम बनाया गया। इसके अनुसार हिन्दी संघ की राजभाषा व अंग्रेजी सह-राजभाषा के रूप में प्रयोग में लायी गयी।

5 सितम्बर, 1967 को प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में केन्द्रीय हिन्दी समिति का गठन किया गया। यह समिति सरकार की राजभाषा नीति के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण दिशा-निर्देश देने वाली सर्वोच्च समिति है। इस समिति में प्रधानमंत्री जी के अलावा नामित केन्द्रीय मंत्री, कुछ राज्यों के मुख्यमंत्री, सांसद तथा हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के विद्वान सदस्य के रूप में शामिल किये जाते हैं। 16 दिसम्बर, 1967 को संसद के दोनों सदनों द्वारा राजभाषा संकल्प पारित किया गया जिसमें हिन्दी के राजकीय प्रयोजनों हेतु उत्तरोत्तर प्रयोग के लिए अधिक गहन और व्यापक कार्यक्रम तैयार करने, प्रगति की समीक्षा के लिए वार्षिक मूल्यांकन रिपोर्ट तैयार करने, हिन्दी के साथ-साथ 8वीं अनुसूची की अन्य भाषाओं के समन्वित विकास के लिए कार्यक्रम तैयार करने, त्रिभाषा सूत्र को अपनाये जाने, संघ सेवाओं के लिए भर्ती के समय हिन्दी व अंग्रेजी में से किसी एक के ज्ञान की आवश्यकता अपेक्षित होने तथा संघ लोक सेवा आयोग द्वारा उचित समय पर परीक्षा के लिए संविधान की 8वीं अनुसूची में सम्मिलित सभी भाषाओं तथा अंग्रेजी को वैकल्पिक माध्यम के रूप में रखने की बात कही गयी है। (संकल्प 18-8-1968 को प्रकाशित हुआ) 8 जन, 1968 को राजभाषा अधिनियम, 1963 में संशोधन किये गये। तदनुसार धारा 3 (4) में यह प्रावधान किया गया कि हिन्दी में या अंग्रेजी भाषा में प्रवीण संघ सरकार के कर्मचारी प्रभावी रूप से अपना काम कर सकें तथा केवल इस आधार पर कि वे दोनों ही भाषाओं में प्रवीण नहीं हैं, उनका कोई अहित न हो। धारा 3 (5) के अनुसार संघ के राजकीय प्रयोजनों में अंग्रेजी भाषा का प्रयोग समाप्त कर देने के लिए आवश्यक है कि सभी राज्यों के विधान मण्डलों द्वारा (जिनकी राजभाषा हिन्दी नहीं है) ऐसे संकल्प पारित किये जाएँ तथा उन संकल्पों पर विचार करने के पश्चात् अंग्रेजी भाषा का प्रयोग समाप्त करने के लिए संसद के हरेक सदन द्वारा संकल्प पारित किया जाए। राजभाषा संकल्प 1968 में किये गये प्रावधान के अनुसार वर्ष 1968-69 से राजभाषा हिन्दी में कार्य करने के लिए विभिन्न मदों के लक्ष्य निर्धारित किये गये तथा इसके लिए वार्षिक कार्यक्रम तैयार किया गया। 1 मार्च, 1971 को केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो का गठन किया गया है। इसी अनुक्रम में 1973 में केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो के दिल्ली स्थित मुख्यालय में एक प्रशिक्षण केन्द्र की स्थापना की गयी। 1974 में तीसरी श्रेणी के नीचे के कर्मचारियों, औद्योगिक प्रतिष्ठानों के कर्मचारियों तथा कार्य प्रभारित कर्मचारियों को छोड़कर केन्द्र

सरकार के कर्मचारियों के साथ-साथ केन्द्र सरकार के स्वामित्व एवं नियंत्रणाधीन निगमों, उपक्रमों, बैंकों आदि के कर्मचारियों व अधिकारियों के लिए हिन्दी भाषा, टंकण एवं आशुलिपि का प्रशिक्षण अनिवार्य किया गया।

जून 1975 में राजभाषा से सम्बन्धित संवैधानिक, विधिक उपबन्धों के कार्यान्वयन हेतु राजभाषा विभाग का गठन किया गया। 1976 में राजभाषा नियम बनाये गये। 1976 संसदीय राजभाषा समिति का गठन किया गया। तब से अब तक समिति ने अपनी रिपोर्ट के 8 भाग प्रस्तुत किये हैं जिनमें से प्रथम 7 पर राष्ट्रपति के आदेश जारी हो गये। आठवें खण्ड में की गयी संस्तुतियों पर मंत्रालयों व राज्य सरकारों की टिप्पणी प्राप्त की जा रही है। सरकारी कार्यों में किन प्रयोजनों के लिए केवल हिन्दी का प्रयोग किया जाना है, किनके लिए हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं का प्रयोग आवश्यक है और किन कार्यों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाना है, यह राजभाषा अधि नियम 1963, राजभाषा नियम 1976 और उनके अन्तर्गत समय-समय पर राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय की ओर से जारी किये गये निर्देशों द्वारा निर्धारित किया गया है। 1981 केन्द्रीय सचिवालय राजभाषा सेवा संवर्ग का गठन किया गया।

9 अक्टूबर, 1987 को राजभाषा नियम, 1976 में संशोधन किये गये। केन्द्रीय सरकार की राजभाषा नीति के अनुपालन कार्यान्वयन के लिए न्यूनतम हिन्दी पदों के मानक पुनः निर्धारित किये गये। 25 अक्टूबर, 1983 को केन्द्रीय सरकार के मंत्रालयों, विभागों, सरकारी उपक्रमों, राष्ट्रीयकृत बैंकों में यांत्रिक और इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों द्वारा हिन्दी में कार्य को बढ़ावा देने तथा उपलब्ध द्विभाषी उपकरणों के प्रचार-प्रसार के उद्देश्य से राजभाषा विभाग में तकनीकी कक्ष की स्थापना की गयी। 21 अगस्त, 1985 को केन्द्रीय हिन्दी प्रशिक्षण संस्थान का गठन किया गया। कर्मचारियों, अधिकारियों को हिन्दी भाषा, हिन्दी टंकण और हिन्दी आशुलिपि के पूर्णकालिक गहन प्रशिक्षण सुविधा उपलब्ध कराने के लिए किया गया।

कर्मचारियों को हिन्दी में कार्य हेतु प्रेरित करने के लिए अनेक प्रयत्न किये गये हैं। हिन्दी में प्रवीणता या हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान रखने वाले कर्मचारियों को पुरस्कृत करने की योजनाएँ भी रहती हैं। यदि किसी कर्मचारी ने (क) मैट्रिक परीक्षा या उसकी समतुल्य या उससे उच्चतर कोई परीक्षा हिन्दी के माध्यम से उत्तीर्ण कर ली है या (ख) स्नातक परीक्षा में अथवा स्नातक परीक्षा की समतुल्यता उससे उच्चतर किसी अन्य परीक्षा में हिन्दी को एक वैकल्पिक विषय के रूप में लिया हो या (ग) यदि वह इन नियमों से उपाबद्ध प्रारूप में यह घोषणा करता है कि उसे हिन्दी में प्रवीणता प्राप्त है तो उसके बारे में यह समझा जायेगा कि उसने हिन्दी में प्रवीणता प्राप्त कर ली है। इसी प्रकार यदि किसी कर्मचारी ने (1) मैट्रिक परीक्षा या उसकी समतुल्य या उससे उच्चतर परीक्षा हिन्दी विषय के साथ उत्तीर्ण कर ली है या (2) केन्द्रीय सरकार की हिन्दी परीक्षा योजना के अन्तर्गत आयोजित

प्राज्ञ परीक्षा या यदि उस सरकार द्वारा किसी विशिष्ट प्रवर्ग के पदों के सम्बन्ध में उस योजना के अन्तर्गत कोई निम्नतर परीक्षा विनिर्दिष्ट है, वह परीक्षा उत्तीर्ण कर ली है या (3) केन्द्रीय सरकार द्वारा उस निमित्त विनिर्दिष्ट कोई अन्य परीक्षा उत्तीर्ण कर ली है या (4) यदि वह इन नियमों से उपाबद्ध प्रारूप में यह घोषणा करता है कि उसने ऐसा ज्ञान प्राप्त कर लिया है तो उसके बारे में यह समझा जायेगा कि उसने हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है। यदि केन्द्रीय सरकार के किसी कार्यालय में कार्य करने वाले कर्मचारियों में से अस्सी प्रतिशत ने हिन्दी का ऐसा ज्ञान प्राप्त कर लिया है तो उस कार्यालय के कर्मचारियों के बारे में सामान्यतया यह समझा जायेगा कि उन्होंने हिन्द का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है। केन्द्रीय सरकार के जिन कार्यालयों में कर्मचारियों ने हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है उन कार्यालयों के नाम राजपत्र में अधिसूचित किये जायेंगे।

कम्प्यूटर पर हिन्दी में काम करना सरल हो इसके लिए समय-समय पर अनेक प्रयत्न किये गये। सी-डैक और अन्य संस्थाओं के माध्यम से अनेक सॉफ्टवेयर विकसित कराये गये और उसे कर्मचारियों को उपलब्ध कराया गया। 20 जून, 2005 को 525 हिन्दी फॉण्ट, फॉण्ट कोड कनवर्टर, अंग्रेजी-हिन्दी शब्दकोश, हिन्दी स्पेल चेकर को निःशुल्क प्रयोग के लिए वेबसाइट पर उपलब्ध करा दिया गया। कम्प्यूटर की सहायता से प्रबोध, प्रवीण तथा प्राज्ञ स्तर की हिन्दी स्वयं सीखने के लिए राजभाषा विभाग ने कम्प्यूटर प्रोग्राम (लीला हिन्दी प्रबोध, लीला हिन्दी प्रवीण, लीला हिन्दी प्राज्ञ) तैयार करवा कर सर्वसाधारण द्वारा उसका निःशुल्क प्रयोग के लिए उसे राजभाषा विभाग की वेबसाइट पर उपलब्ध करा दिया गया। 14 सितम्बर, 2004 को कम्प्यूटर की सहायता से तमिल, तेलुगु, मलयालम तथा कन्नड़ भाषाओं के माध्यम से प्रबोध, प्रवीण तथा प्राज्ञ स्तर की हिन्दी स्वयं सीखने के लिए कम्प्यूटर प्रोग्राम तैयार करवा कर उसके निःशुल्क प्रयोग के लिए उसे राजभाषा विभाग की वेबसाइट पर उपलब्ध करा दिया गया। 14 सितम्बर, 2005 को कम्प्यूटर की सहायता से बांग्ला भाषा के माध्यम से प्रबोध, प्रवीण तथा प्राज्ञ स्तर की हिन्दी स्वयं सीखने के लिए प्रोग्राम तैयार करवा कर राजभाषा विभाग की वेबसाइट पर उपलब्ध करा दिया गया। मंत्र-राजभाषा अंग्रेजी से हिन्दी अनुवाद सॉफ्टवेयर प्रशासनिक एवं वित्तीय क्षेत्रों के लिए प्रयोग एवं डाउनलोड हेतु राजभाषा विभाग की वेबसाइट पर उपलब्ध करा दिया गया। 14 सितम्बर, 2006 को कम्प्यूटर की सहायता से उड़िया, असमी, मणिपुरी तथा मराठी भाषा के माध्यम से प्रबोध, प्रवीण तथा प्राज्ञ स्तर की हिन्दी स्वयं सीखने के लिए प्रोग्राम तैयार करवा कर राजभाषा विभाग की वेबसाइट पर उपलब्ध करा दिया गया। मंत्र-राजभाषा अंग्रेजी से हिन्दी अनुवाद सॉफ्टवेयर लघु उद्योग एवं कृषि क्षेत्रों के लिए प्रयोग एवं डाउनलोड हेतु राजभाषा विभाग की वेबसाइट पर उपलब्ध करा दिया गया। 14 सितम्बर, 2007 को कम्प्यूटर की सहायता से नेपाली, पंजाबी, कश्मीरी तथा गुजराती भाषा के माध्यम से प्रबोध, प्रवीण तथा प्राज्ञ स्तर की हिन्दी स्वयं सीखने के लिए प्रोग्राम तैयार करवा कर राजभाषा विभाग की वेबसाइट

पर उपलब्ध करा दिया गया। मंत्र-राजभाषा अंग्रेजी से हिन्दी अनुवाद सॉफ्टवेयर सूचना-प्रौद्योगिकी एवं स्वास्थ्य सुरक्षा क्षेत्रों के लिए प्रयोग एवं डाउनलोड हेतु राजभाषा विभाग की वेबसाइट पर उपलब्ध करा दिया गया।

स्वतंत्र देश के निर्माताओं ने हिन्दी को संविधान में स्थान दिलाया फिर भी सात दशक की यात्रा के बावजूद हिन्दी वह गौरव न पा सकी जो अपेक्षित था। स्वतंत्र भारत के सत्ता वर्ग का दृढ़ संकल्प देश को इससे मुक्ति दिला सकता था, किन्तु आधिपत्य की मूल भावना स्वातंत्र्योत्तर भारत के स्थानापन्न शासकों में यथावत बनी रही। फलतः विशिष्ट बने रहना और जनता से दूरी बनाये रहने के मोह ने न केवल अपनी भाषा को अपनाने के संकल्प का क्षरण करता रहा, वरन् शासकीय प्रयोजनों से हिन्दी को राजभाषा के पद पर अधिष्ठित हो जाने के बावजूद उसे व्यावहारिक दृष्टि से पर्याप्त उपेक्षित रखा। राजभाषा नीति, नियम तथा अधिनियम बहुत अच्छे हैं परन्तु केन्द्र सरकार के कार्यालयों में तो ये कोई मायने नहीं रखता है क्योंकि वो इन नियमों का अनुसरण नहीं करते हैं। इसका दूसरा कारण कुछ हद तक स्वयं राजभाषा की प्रवृत्ति भी है। इसका हम संक्षेप में विवेचन करेंगे।

राजभाषा हिन्दी की प्रवृत्ति

अंग्रेजों ने अपने सत्ता संचालन को स्थायी बनाने के लिए लोकतंत्र के नाम पर शासकीय प्रयोजनों के लिए स्थानीय लोगों को भागीदार बनाया। सत्ता संचालन का उनका तंत्र उनका अपना था, स्वयमेव विकसित किया हुआ। शासकीय प्रयोजनों से सम्बन्धित राजभाषा की सबसे खास बात यह होती है कि यह तंत्र सापेक्ष विकसित और अनुकूलित होती है। भाषा के अनुसार तंत्र नहीं ढलता अपितु तंत्र के सापेक्ष भाषा ढलती है। अंग्रेजी राज में भी यही हुआ। अंग्रेजों ने अपनी राजभाषा को अपने तंत्र के अनुकूल खड़ा किया। उसे अपने नियमों-परिनियमों के अनुसार समृद्ध बनाया।

वर्तमान में विकसित राजकीय संचालन का तंत्र पूर्णतया अंग्रेजों द्वारा विकसित विदेशी तंत्र था। अपने उद्देश्यों और भावना के अनुसार अंग्रेजों ने अपना तंत्र विकसित किया था। जहाँ खड़ी बोली हिन्दी की आवश्यकता थी वहाँ उन्होंने अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद किया अथवा कराया था। यह प्रवृत्ति शासकीय हिन्दी की आजतक बनी हुई है। यही कारण है कि राजभाषा हिन्दी का स्वाभाविक विकास होना चाहिए था उसकी जगह पर हिन्दी आज भी अंग्रेजी के अनुवादों पर आश्रित कृत्रिम हिन्दी है। यह बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण है कि स्वतंत्र भारत का विदेशी तंत्र और विदेशी भाषा आज भी राजभाषा हिन्दी के स्वाभाविक विकास में बड़ी बाधा है। अनुवाद के आश्रय के कारण राजभाषा हिन्दी का कृत्रिम स्वरूप आज भी जनसामान्य हिन्दी भाषा-भाषियों के बीच अबोधगम्य बना हुआ है। सामान्य भाषा में शब्द भाषिक इकाई के रूप में काम करते हैं जबकि शासकीय हिन्दी में पारिभाषिक शब्द और पदबन्ध भाषिक इकाई के रूप में कार्य करते हैं। राजभाषा हिन्दी प्रयुक्तियों की एक ऐसी

निर्मित भाषा है जो स्वाभाविकता से परे है। यह राजकीय हिन्दी ऐसी है मानों अंग्रेजी जानने वालों के लिए प्रस्तुत अनूदित रूप है, हिन्दी जानने वालों के लिए नहीं। इसमें स्वाभाविकता का पर्याप्त अभाव है।

स्वातंत्र्योत्तर शासन की विशेषता यह रही कि राज्य तो देशी लोगों के हाथ आया किन्तु शासन संचालन का तंत्र वही पुराना रहा। फलतः राजभाषा अंग्रेजी का तंत्र चलता रहा। जनता के अपेक्षित दबाव के प्रभावस्वरूप राजभाषा के सन्दर्भ में बार-बार जो संकल्प लिया गया, राजभाषा हिन्दी की स्वीकार्यता को दुहराया गया, इससे राजभाषा हिन्दी के पक्ष में स्थितियाँ बनीं, किन्तु इसे आधे-अधूरे मन से ही स्वीकार किया गया। इसका परिणाम यह रहा कि राजभाषा हिन्दी का शासकीय प्रयोजनों के उपयुक्त जो भाषिक स्वरूप निर्मित हुआ वह पूर्णतः अनुवाद पर आधारित रहा। अतः यदि यह कहें कि शासन संचालन में शासकीय प्रयोजनों की हिन्दी स्वतःस्फूर्त हिन्दी न होकर अपने स्वभाव के प्रतिकूल एक कृत्रिम हिन्दी है तो यह गलत न होगा। प्रवृत्ति की दृष्टि से बेमेल भाषिक प्रयोग राजकाज की हिन्दी में हो रहे हैं। शासकीय पत्र-व्यवहार की हिन्दी सिखाने वाली पुस्तकें और शिक्षक आज भी कामकाजी हिन्दी में तथाकथित दुरूह पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग और अंग्रेजी पदों के हिन्दी उल्था को कण्ठस्थ करने की हिदायत देते हैं। राजभाषा हिन्दी में लम्बे शुष्क पदबन्धों के प्रयोगों की बहुतायत है। इन अनूदित हिन्दी के कारण शासकीय प्रयोजन के हिन्दी की इकाई मूलतः शब्द न होकर, पदबन्ध हैं। इन पदबन्धों को तोड़कर लिखना अभिधेयार्थ तक पहुँचने में बड़ी बाधा उत्पन्न करते हैं। जहाँ प्रशासनिक साहित्य के राजभाषा हिन्दी में प्रकाशित या लेखन की अनिवार्यता है वहाँ तो हिन्दी का प्रयोग होता है किन्तु जहाँ अंशमात्र भी ऐच्छिक प्रयोग की स्वतंत्रता है वहाँ अंग्रेजी मानसिकता की स्वेच्छाचारिता दिखती है।

राजभाषा हिन्दी की वर्तमान स्थिति

संविधान में 1949 ई. में राजभाषा के रूप में हिन्दी की स्वीकार्यता बनी। तब से लेकर अबतक लगभग 70 वर्ष हो चुके हैं। अपना देश बहुभाषी देश है, इस चरित्र को ध्यान में रखते हुए सरकारी कार्यालयों में हिन्दी प्रयोग का सामर्थ्य बढ़े इस हेतु सम्पूर्ण देश को 'क', 'ख' और 'ग' श्रेणी में विभक्त किया गया। यहाँ क्षेत्र 'क' से बिहार, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, उत्तराखण्ड, राजस्थान और उत्तर प्रदेश राज्य तथा अण्डमान और निकोबार द्वीप समूह, दिल्ली संघ राज्य क्षेत्र अभिप्रेत हैं, क्षेत्र 'ख' से गुजरात, महाराष्ट्र और पंजाब राज्य तथा चण्डीगढ़, दमण और दीव तथा दादरा और नगर हवेली संघ राज्य क्षेत्र अभिप्रेत हैं तथा क्षेत्र 'ग' से खण्ड (1) और (2) में निर्दिष्ट राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों से भिन्न राज्य तथा संघ राज्य क्षेत्र अभिप्रेत हैं। इन क्षेत्रों में चरणबद्ध रूप में हिन्दी प्रयोग का कार्यक्रम निर्धारित किया गया। इन प्रयोगों की वर्तमान स्थिति क्या है, प्रतिदर्श आधार पर कुछ कार्यालयों के प्रतिवेदन के आधार पर इसे समझा

जा सकता है।

राजभाषा के सन्दर्भ में यह कहा गया था कि केन्द्र के कार्यालय शत-प्रतिशत अपना कार्य हिन्दी में सम्पादित करेंगे किन्तु उनके प्रयोगों को निम्न सारणी से देखा जा सकता है। राजभाषा 1976 की नियमावली के अनुसार 'क' और 'ख' वर्ग के क्षेत्रों में 100 प्रतिशत हिन्दी में पत्राचार होना आवश्यक है, 'ग' वर्ग के क्षेत्रों में 85 प्रतिशत। किन्तु मानव संसाधन विकास मंत्रालय एवं समिति के सदस्य कार्यालयों की कार्यान्वयन की निम्न प्रगति रिपोर्ट (दिनांक 31 दिसम्बर, 2016 को समाप्त हुई छमाही की स्थिति के आधार पर) बड़ी हतोत्साहजनित रही है।

हिन्दी पत्राचार की स्थिति

क्र.सं.	कार्यालय का नाम	हिन्दी पत्राचार का प्रतिशत		
		'क' क्षेत्र	'ख' क्षेत्र	'ग' क्षेत्र
01	मानव संसाधन विकास मंत्रालय	52.30%	52.40%	41.80%
02	प्रौढ़ शिक्षा निदेशालय	65%	60%	40%
03	केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय	100%	100%	95%
04	विश्वविद्यालय अनुदान आयोग	21.03%	18.03%	28.76%
05	राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान	71%	67%	66%
06	वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग	100%	100%	100%
07	भारतीय भाषा संस्थान	4.08%	7.08%	22.31%
08	महात्मा गाँधी अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय	100%	100%	09%
09	केन्द्रीय विद्यालय संगठन	87.98%	83.27%	76.40%
10	नवोदय विद्यालय समिति	80.76%	83%	80.69%
11	केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड	68.88%	67.80%	44.30%
12	अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद्	48%	21%	13.5%
13	राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्	62.52%	55.60%	36.65%
14	राष्ट्रीय बाल भवन	85.76%	86.04%	84.01%
15	केन्द्रीय हिन्दी संस्थान	99.9%	99%	98%

उक्त राजभाषा अधिनियम की धारा का उल्लंघन दण्डनीय अपराध है। केन्द्र सरकार के अधि कांश विभागों एवं संस्थानों के हिन्दी उपयोग की स्थिति को निम्न सारणी से समझा जा सकता है।

राजभाषा अधिनियम 1963 की धारा (3)3 के अन्तर्गत अनिवार्य रूप से द्विभाषी जारी किये जाने वाले कागजात निम्नानुसार निर्धारित किये गये हैं-

01	सामान्य आदेश	General Orders
02	संकल्प	Resolution
03	परिपत्र	Circulars
04	नियम	Rules
05	प्रशासनिक या अन्य प्रतिवेदन	Administrative or other reports
06	प्रेस विज्ञप्तियाँ	Press Release/ Communiqués
07	संविदाएँ	Contracts
08	करार	Agreements
09	अनुज्ञप्तियाँ	Licenses
10	निविदा प्रारूप	Tender Forms
11	अनुज्ञा पत्र	Permits
12	निविदा सूचनाएँ	Tender Notices
13	अधिसूचनाएँ	Notifications
14	संसद के समक्ष रखे जाने वाले प्रतिवेदन तथा कागज पत्र	Reports and documents to be laid before the Parliament

उदाहरणस्वरूप केन्द्र सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय के विभिन्न संस्थाओं में हिन्दी प्रयोग के सन्दर्भ में राजभाषा अधिनियम की धारा 3(3) का अनुपालन सम्प्रति निम्नानुसार है-

<table>
<tr><td>Øl a</td><td>dk;kZy; dk uke</td><td colspan="3">jkt Hkk"kk vf/fu;e dh /kjk 3(3) dsvuqikyu dh fLFkfr</td></tr>
<tr><td></td><td></td><td>fgUnh esa tkjh</td><td>f}Hkk"kh esa tkjh</td><td>vaxzsth esa tkjh</td></tr>
<tr><td>01</td><td>ekuo lalk/u fodkl ea=ky;</td><td>6469</td><td>&</td><td>&</td></tr>
<tr><td>02</td><td>çkS+f'k{kk funs'kky;</td><td>&</td><td>34</td><td>&</td></tr>
<tr><td>03</td><td>dsUnzh; fgUnh funs'kky;</td><td>1206</td><td>&</td><td>&</td></tr>
<tr><td>04</td><td>fo'ofo|ky; vuqnku vk;ksx</td><td>5106</td><td>&</td><td>45166</td></tr>
<tr><td>05</td><td>jk"Vªh; eqDr fo|ky;h f'k{kk laLFkku</td><td>&</td><td>100</td><td>&</td></tr>
<tr><td>06</td><td>oSKkfud ,oa rduhdh 'kCnkoyh vk;ksx</td><td>100</td><td>&</td><td>&</td></tr>
<tr><td>07</td><td>Hkkjrh; Hkk"kk laLFkku</td><td>176</td><td>211</td><td>4419</td></tr>
<tr><td>08</td><td>egkRek xka/h vUrjkZ"Vªh; fgUnh fo'ofo|y;</td><td>&</td><td>2659</td><td>&</td></tr>
<tr><td>09</td><td>dsUnzh; fo|ky; laxBu</td><td>&</td><td>2485</td><td>&</td></tr>
<tr><td>10</td><td>uoksn; fo|ky; lfefr</td><td>7198</td><td>&</td><td>&</td></tr>
<tr><td>11</td><td>dsUnzh; ekè;fed f'k{kk cksMZ</td><td>&</td><td>470</td><td>&</td></tr>
<tr><td>12</td><td>vf[ky Hkkjrh; rduhdh f'k{kk ifj"kn~</td><td>135</td><td>190</td><td>325</td></tr>
<tr><td>13</td><td>jk"Vªh; 'kSf{kd vuqla/ku ,oa izf'k{k.k ifj"kn~</td><td>&</td><td>6632</td><td>&</td></tr>
<tr><td>14</td><td>jk"Vªh; cky Hkou</td><td>&</td><td>316</td><td>&</td></tr>
<tr><td>15</td><td>dsUnzh; fgUnh laLFkku</td><td>3078</td><td>&</td><td>03</td></tr>
</table>

राजभाषा अधिनियम 1976 के नियम 6 के 2 में प्राविधान किया गया है कि 'क' और 'ख' क्षेत्र में हिन्दी के पत्राचार का उत्तर हिन्दी में दिया जाएगा। रबर स्टाम्प साइनबोर्ड का द्विभाषी होना आवश्यक है जिसमें हिन्दी के अक्षर अंग्रेजी के अक्षर से मोटे होंगे, पहले हिन्दी में फिर अंग्रेजी में लिखा जाएगा। इसकी भी प्रति निम्न सारणी से देखी जा सकती है।

jcj dhelqj] ukei VkWj I kbucksMZ dh f}Hkkf"kdrk dh fLFkfr

<table>
<tr><td>Øl a</td><td>dk;kZy; dk uke</td><td colspan="3">jcj dhelqj</td><td colspan="3">ukei VkWj</td><td colspan="3">I kbucksMZ</td></tr>
<tr><td></td><td></td><td>fgUnh ea</td><td>vaxzsth ea</td><td>f}Hkk"kh ea</td><td>fgUnh ea</td><td>vaxzsth ea</td><td>f}Hkk"kh ea</td><td>fgUnh ea</td><td>vaxzsth ea</td><td>f}Hkk"kh ea</td></tr>
<tr><td>01</td><td>ekuo lalk/ku fodkl ea=ky;</td><td>&</td><td>&</td><td>254</td><td>&</td><td>&</td><td>254</td><td>&</td><td>&</td><td>6</td></tr>
<tr><td>02</td><td>çkS|ksfxdh f'k{kk funs'kky;</td><td>&</td><td>&</td><td>39</td><td>&</td><td>&</td><td>20</td><td>&</td><td>&</td><td>4</td></tr>
<tr><td>03</td><td>dsUæh; fgUnh funs'kky;</td><td>&</td><td>&</td><td>75</td><td>&</td><td>&</td><td>28</td><td>&</td><td>&</td><td>5</td></tr>
<tr><td>04</td><td>fo'ofo|ky; vuqnku vk;ksx</td><td>10</td><td>&</td><td>197</td><td>&</td><td>&</td><td>32</td><td>&</td><td>&</td><td>4</td></tr>
<tr><td>05</td><td>jk"Vªh; eqDr fo|ky;h f'k{kk laLFkku</td><td>&</td><td>&</td><td>100</td><td>&</td><td>&</td><td>100</td><td>&</td><td>&</td><td>100</td></tr>
<tr><td>06</td><td>oSKkfud ,oa rduhdh 'kCnkoyh vk;ksx</td><td>8</td><td>6</td><td>21</td><td>1</td><td>&</td><td>1</td><td>&</td><td>&</td><td>10</td></tr>
<tr><td>07</td><td>Hkkjrh; Hkk"kk laLFkku</td><td colspan="9">lHkh f}Hkk"kh eas ykxw gSa</td></tr>
<tr><td>08</td><td>egkRek xka/kh vUrjkZ"Vªh; fgUnh fo'ofo|ky;</td><td>&</td><td>&</td><td>132</td><td>&</td><td>&</td><td>&</td><td>109</td><td>&</td><td>22</td></tr>
<tr><td>09</td><td>dsUæh; fo|ky; laxBu</td><td>27</td><td>&</td><td>57</td><td>6</td><td></td><td>27</td><td>4</td><td>&</td><td>2</td></tr>
<tr><td>10</td><td>uoksn; fo|ky; lfefr</td><td></td><td>&</td><td>40</td><td></td><td></td><td>34</td><td></td><td>&</td><td>39</td></tr>
<tr><td>11</td><td>dsUæh; ekè;fed f'k{kk cksMZ</td><td>74</td><td>&</td><td>66</td><td>25</td><td></td><td>43</td><td>11</td><td>&</td><td>32</td></tr>
<tr><td>12</td><td>vf[ky Hkkjrh; rduhdh f'k{kk ifj"kn~</td><td>&</td><td>&</td><td>58</td><td>&</td><td>&</td><td>58</td><td>&</td><td>&</td><td>58</td></tr>
<tr><td>13</td><td>jk"Vªh; 'kS{kd vuqla/kku ,oa izf'k{k.k ifj"kn~</td><td>&</td><td>&</td><td>100</td><td>&</td><td>&</td><td>100</td><td>&</td><td>&</td><td>100</td></tr>
<tr><td>14</td><td>jk"Vªh; cky Hkou</td><td>&</td><td>&</td><td>33</td><td>&</td><td>&</td><td>134</td><td>&</td><td>&</td><td>16</td></tr>
<tr><td>15</td><td>dsUæh; fgUnh laLFkku</td><td>140</td><td>28</td><td>29</td><td>26</td><td>&</td><td>41</td><td>01</td><td>&</td><td>09</td></tr>
</table>

उक्त अधिनियम के अनुसार सरकार के विभागों एवं संस्थानों की बैठक अनिवार्य है जिसकी कार्यालय प्रमुख अध्यक्षता करेंगे। परन्तु सामान्य व्यवहार में यह देखा गया है कि वर्षों बीत जाने पर भी हिन्दी समिति की बैठक नहीं होती, होती भी है तो खानापूर्ति बस। उपर्युक्त स्थिति के अवलोकन से यह बात प्रत्यक्ष होती है कि 'क' और 'ख' क्षेत्र ने सर्वाधिक हिन्दी की उपेक्षा की है और वह भी मंत्रालयों में अधिक। जबकि 'ग' क्षेत्र के कार्य अधिक उत्साहजनक रहे हैं।

उन्नीसवीं सदी के उत्तर में कम्प्यूटरों की बढ़ती संरचनात्मक सुविधा ने प्राथमिक चरण में अंग्रेजी प्रयोग की लाचारी का वातावरण बनाया था। किन्तु विकास के अगले चरण में 16 बिट के यूनीकोड और देवनागरी में लेखन सुविधा (इनपुट टूल्स) से हिन्दी में सरकारी पत्र–व्यवहार के प्रारूप को हिन्दी में लिखना सरल हुआ और सी–डैक और अन्य संस्थाओं के सद्प्रयासों से अनुवाद की सुविधाएँ साकार हुईं, 14 सितम्बर को प्रत्येक कार्यालय में हिन्दी दिवस मनाकर हिन्दी प्रयोग के संकल्प लिये जाते हैं, प्रोत्साहन कार्यक्रम होते हैं, नियमों–कानूनों में सख्त कदम उठाये जाते हैं, किन्तु

प्रयोग के प्रतिशत आँकड़ों को देखें तो अभी भी स्थिति निराशाजनक है। हिन्दी अभी भी दिल्ली से कोसों दूर है।

सन्दर्भः

1. राजभाषा अधिनियम, 1963
2. हिन्दी सलाहकार समिति, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार की दिनांक 22 मई 2017 को सम्पन्न बैठक में प्रस्तुत प्रतिवेदन
3. Wikipedians®

स्वतंत्र भारत में हिन्दी की विकास यात्रा - वैश्विक सन्दर्भ में

डॉ. गायत्री सिंह*

हिन्दी विश्व के सबसे बड़े प्रजातांत्रिक देश भारत की राजभाषा, सम्पर्क भाषा और अघोषित राष्ट्रभाषा है, जिसके बोलने वालों की संख्या 1 अरब तथा समझने वालों की संख्या लगभग 1 अरब 25 करोड़ है। स्वतंत्रता के बाद 14 सितम्बर 1949 को संविधान सभा ने एकमत से हिन्दी खड़ी बोली को देवनागरी लिपि के साथ भारत की राजभाषा घोषित किया। इस महत्त्वपूर्ण दिन की स्मृति अक्षुण्ण रखने के लिए 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा' के अनुरोध पर सन् 1953 से प्रतिवर्ष 14 सितम्बर को 'हिन्दी दिवस' मनाने की परम्परा का श्रीगणेश हुआ। हिन्दी मात्र एक भाषा ही नहीं, वह एक संस्कृति और संस्कारों का प्रतिबिम्ब भी है, जो कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक सभी भारतीयों द्वारा सम्पर्क भाषा के रूप में प्रयुक्त की जाती है। हिन्दी का इतिहास 1000 वर्ष पुराना है, अपने जन्म से लेकर स्वतंत्रता के पूर्व तक यह भाषा राज्याश्रय के सहारे नहीं अपने दम पर अनेक बोलियों और रूपों में विकसित होती रही, पतितपावनी गंगा की तरह सभी भाषाओं, सभ्यताओं, संस्कृतियों को आत्मसात करती हुई वर्तमान वैश्विक आकार ले सकी है। देवनागरी लिपि जैसी वैज्ञानिकता और विराट समृद्ध साहित्य, सरलता, सहजता और बोधगम्यता इसकी पहचान और टिकाऊपन का कारण है।

विदेशी हिन्दी विद्वान क्या कहते हैं, हिन्दी के बारे में-

- इटली निवासी **डॉ. एल.पी. टेस्टीटोरी** ने 1911 में फ्लोरेंस विश्वविद्यालय से सर्वप्रथम (पूरे विश्व में) 'तुलसी और वाल्मीकि के रामायण का तुलनात्मक अध्ययन' विषय पर शोध -कार्य किया। जीवनपर्यन्त वे भारत में रहे और भारत के धर्म, दर्शन, भाषा, साहित्य पर मोहित होते रहे। बीकानेर में उनकी मृत्यु हुई।
- दूसरा शोध-कार्य लन्दन विश्वविद्यालय में 1918 में **डॉ. जे.एन.कारपेंटर** ने किया। यह

*प्राचार्य, आरमापुर पी.जी. कॉलेज, कानपुर, उत्तर प्रदेश

कार्य भी रामचरितमानस पर ही था।

- विश्व प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक **सर जार्ज ग्रियर्सन** ने हिन्दी का भाषा विज्ञान तथा हिन्दी साहित्य का इतिहास दिया। उनका मत है, "हिन्दी तो दुनिया की सभी भाषाओं की राजरानी है।"
- हिन्दी साहित्य का सबसे पहला इतिहास भी एक फ्रेंच विद्वान **गार्सा दि तासी** ने लिखा, अनके हिन्दी पुस्तकों, संस्कृत पुस्तकों की समीक्षाओं के साथ-साथ रामचरितमानस के सुन्दरकाण्ड का फ्रांसीसी अनुवाद भी किया।
- बेल्जियम के फादर रेवरेण्ड **डॉ. कामिल बुल्के** 1935 में जर्मन भाषा में अनूदित रामचरितमानस की एक चौपाई मे इतने प्रभावित हुए कि भारतीय संस्कृति और हिन्दी के प्रेम में भारत आये और फिर यहीं के होकर रह गये।
- **डॉ. अलेक्जिया वारान्निकोव** रूसी विद्वान ने 10 वर्षों तक रामचरितमानस का रूसी भाषा में पद्यानुवाद किया और इस कृति पर उन्हें रूस का सर्वोच्च सम्मान 'ऑर्डर ऑफ लेनिन' प्रदान किया गया। उन्होंने अपनी वसीयत में लिखा था कि उनकी समाधि पर तुलसी की चौपाई लिखी जाय। उनके पुत्र **पी. वारान्निकोव** जो स्वयं एक हिन्दी विद्वान थे, उन्होंने उनकी समाधि पर यह चौपाई लिखवाई जो आज हिन्दुस्तानियों का एक तीर्थ बन गया है, जो हिन्दी विद्वान वहाँ जाते हैं वे उनकी समाधि देखने लेनिनग्राद में अवश्य जाते हैं।

  "भलो भलाइहि पै लहहि, लहहि निचाइहि नीचु।
  सुधा सराहिय अमरताँ, गरल सराहिय मीचु।।"

- **प्रो. माइकेल सोरापीरी** के अनुसार, "दुनिया भर के साहित्य के सन्दर्भ में हिन्दी साहित्य की विविधता और प्रचुरता का महत्त्व बढ़ गया है।"
- लन्दन विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के **प्रो. डॉ. रूपर्ट स्नेल** जिन्होंने सोलहवीं सदी की ब्रजभाषा पर शोधकार्य किया और ब्रजभाषा में ही अपना शोध-ग्रन्थ भी प्रस्तुत किया।
- जनवादी जर्मन गणतंत्र में रेडियो बर्लिन के हिन्दी अधिकारी **डॉ. फ्रेडमैन लैंडर** की हिन्दी के प्रति भावना इन शब्दों में व्यक्त हुई है- "हमें न केवल प्रसन्नता होती है बल्कि गर्व भी है कि हम बर्लिन रेडियो द्वारा हिन्दी की छोटी सी सेवा कर रहे हैं और कार्यक्रमों के द्वारा उसे अन्तर्राष्ट्रीय संवाद की भाषा बनाने में योगदान दे रहे हैं। हिन्दी एक अन्तर्राष्ट्रीय चरित्र अपना रही है और हम उसके अन्तर्राष्ट्रीय चरित्र में अपना निरन्तर मर्यादित योगदान दे रहे हैं।"
- यूरोपीय हिन्दी विद्वान एवं कवि **प्रो. ओडोलेन स्मेकेल** चेकोस्लोवाकिया के राजदूत बनकर

भारत आये, अनेक समारोहों में वे भागीदारी करते थे, एक दर्जन से अधिक पुस्तकें लिखीं, उनकी कविता की कुछ पंक्तियाँ उनके भाव को ज्यादा अच्छी तरह व्यक्त कर पायेंगी-

"हिन्दी ज्ञान मेरे लिए अमृत पान
जितनी बार पीता हूँ उतनी बार लगता है पुनः जीता हूँ।

- जापान के हिन्दी विद्वान **प्रो. क्युमा दोई** के शब्दों में- "भारत में संसार के लोगों का ध्यान आकृष्ट करने वाली महान संस्कृति है।.....परन्तु, भारत का जो सार है उसे अंग्रेजी आदि विदेशी भाषा में नहीं समझ सकते। यदि एक बार भारत आ जाए तो वे लोग हिन्दी के लिए बहुत उत्सुक हो जायेंगे। .....यदि संसार में एक सम्पर्क भाषा हो तो वह हिन्दी ही हो सकती है।"
- चीन एक साम्यवादी देश है। साम्यवाद की अवधारणा के पितामह **कार्ल मार्क्स** ने धर्म को अफीम कहा था, किन्तु उसी देश के बीजिंग विश्वविद्यालय के हिन्दी **प्रो. जिनदिंगझन** ने रामचरितमानस का चीनी अनुवाद किया है।
- रूस के शोधकर्ता **डॉ. ग्रिनस्टर** तथा **वी. लिपरोव्स्की** जैसे विद्वानों का कहना है- "रामायण तथा महाभारत ये दो कथानक पूरे एशिया को साहित्य के विकास की ही नहीं बल्कि कला, संस्कृति और विचारधारा के विकास की दृष्टि देते हैं।"
- जापान के ओसाका विश्वविद्यालय के हिन्दी मनीषी **प्रो. कोएत्से कोगा** हिन्दी विभाग के अध्यक्ष भी थे, वे जब भी भारत आते तो यह देखकर आश्चर्य करते कि यहाँ के लोगों से जब भी हिन्दी में कुछ पूछा तो जवाब अंग्रेजी में मिलता है।
- **फादर कामिल बुल्के** का कथन विशेष उल्लेखनीय है- "हिन्दी में अभिव्यक्ति की अद्‌भुत क्षमता है, यह सबसे अधिक सुस्पष्ट, समृद्ध और सरल सुबोध है। इसमें असंख्य मुहावरे और लोकोक्तियाँ हैं, जो अत्यन्त रोचक हैं। संसार की कोई भी ऐसी भाषा नहीं जो सरलता और अभिव्यक्ति की क्षमता की बराबरी हिन्दी से कर सके। इसकी लिखाई और उच्चारण में आश्चर्यजनक अनुरूपता है, इसका शब्द भण्डार विपुल है। हिन्दी अपनी ढेर से सहायक क्रियाओं की सहायता से सूक्ष्म, जटिल और अत्यन्त परिष्कृत, आधुनिकतम विचार भी पूर्णतः व्यक्त कर सकती है।"

हिन्दी ही भारत की प्रतिनिधि क्यों?

भारत में हजारों भाषाएँ हैं। संविधान की आठवीं अनुसूची में ही 22 बड़ी भाषाओं को मान्यता मिली हुई है,तो हिन्दी को ही पूरे भारत की जुबान क्यों माना जाए?

तो इस प्रश्न का सीधा उत्तर है कि हिन्दी सबसे बड़े भूभाग में सबसे अधिक लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा है। भारत के कई बड़े प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, दिल्ली, उत्तराखण्ड, राजस्थान, हरियाणा, हिमांचल प्रदेश तथा केन्द्रशासित राज्यों की मुख्य भाषा हिन्दी ही है। हिन्दी बोलने वालों की संख्या लगभग 1 अरब है। हिन्दी का एक समृद्ध इतिहास और साहित्य है।

हिन्दी की लिपि देवनागरी विश्व की सबसे वैज्ञानिक लिपि है और सरल व्याकरण वाली भाषा है। हिन्दी जैसी लिखी जाती है वैसी ही बोली जाती है। लगभग ढाई लाख शब्द भण्डार हैं इस भाषा में। हिन्दी भाषा के सन्दर्भ में सबसे बड़ी और महत्त्वपूर्ण बात है हिन्दी को पसन्द करने वाले देशी-विदेशी विद्वानों और स्वतंत्रता संग्राम के कर्णधार नेताओं की स्वीकृति प्राप्त है।

अहिन्दी भाषी विद्वानों और नेताओं की स्वीकारोक्ति

प्राय: हिन्दी के पक्ष में बात करने वाले सारे विद्वान, चिंतक, मनीषी, नेता हिन्दीतर ही रहे हैं, जरा एक नजर डालते हैं, ऐसे मनीषियों पर-

महात्मा गाँधी, महर्षि अरविन्द, रवीन्द्रनाथ टैगोर, बंकिमचन्द्र चटर्जी, स्वामी विवेकानन्द, सरदार पटेल, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस, सावरकर बन्धु, राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन, स्वामी दयानन्द सरस्वती, सुब्रह्मण्यम भारती, राजा राममोहन राय, गोपालस्वामी आयंगर, सरोजनी नायडू, लोकमान्य तिलक, विनोबा भावे, काका कालेलकर, डॉ. भीमराव अम्बेडकर आदि सभी हिन्दीतर विद्वान हैं, किन्तु हिन्दी के नाम पर सबका एक मत था कि हिन्दी ही भारत को एक सूत्र में बाँधकर चल सकती है।

पूर्व राष्ट्रपति एवं शिक्षाविद् **डॉ. राधाकृष्णन** का कहना है कि "हिन्दी एक मनोवैज्ञानिक भाषा है, केवल इसमें ही जैसा बोलते हैं वैसा लिखने की क्षमता है।"

संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुसार विश्व में बोली जाने वाली भाषाओं में चीनी भाषा का प्रथम स्थान और हिन्दी भाषा का द्वितीय स्थान है। अंग्रेजी तृतीय स्थान पर है। तो जो भाषा विश्व भाषा के स्तर पर आ चुकी है, उसके विरोध में कुछ भी कहना केवल भ्रान्ति, ईर्ष्या और राजनीतिक दाँव-पेंच हो सकता है।

मैं एक पंक्ति के साथ इस मुद्द को यहीं छोड़ देना चाहती हूँ और आगे की बात करती हूँ।

"हम जीतने को हैं हारी हुई लड़ाई।
बस एक दूसरे की थामे रहें कलाई।।"

प्रवासी भारतीयों के मध्य विदेशों में हिन्दी

विदेशों में हिन्दी की स्थिति से आप थोड़ा बहुत अवगत हो चुके होंगे क्योंकि विदेशी विद्वानों की रुचि, आस्था, विश्वास और प्रेम समर्पण से ही हिन्दी के उजले पक्ष को दुनिया जान पाई।

हिन्दी का इतिहास, हिन्दी की समीक्षाएँ, उनको दुनिया के सामने लाने का काम तो इन्हीं विदेशी विद्वानों ने किया। लगभग 175 से अधिक देशों में हिन्दीभाषी भारतीय रह रहे हैं और हिन्दी के प्रति प्रेम के कारण और अपनी अगली पीढ़ी को अपनी संस्कृति से जोड़ने के लिए इन सभी देशों में 900 से अधिक प्राइमरी स्कूलों, कॉलेजों, विश्वविद्यालयों, संस्थाओं में हिन्दी शिक्षण, पठन-पाठन तथा शोध का कार्य चल रहा है। संख्या कुछ ऊपर-नीचे हो सकती है।

विश्व हिन्दी सम्मेलन -हिन्दी विकास का नया सोपान

हिन्दी की गति में उछाल तब आया जब 1975 में पहला विश्व हिन्दी सम्मेलन भारत के महाराष्ट्र प्रान्त के नागपुर शहर में आयोजित हुआ। इसके बाद दूसरा सबसे बड़ा क्रान्तिकारी कदम था- 1977 में **माननीय अटल बिहारी वाजपेयी** द्वारा विदेश मंत्री के रूप में संयुक्त राष्ट्र संघ में हिन्दी में सम्बोधन किया जाना जिसके कुछ शब्द इस प्रकार हैं-

"हमारी कार्यसूची का एक सर्वस्पर्शी विषय जो आगामी अनेक वर्षों और दशकों में बना रहेगा। हम एक विश्व के आदर्शों की प्राप्ति और मानव कल्याण तथा उसके गौरव के लिए त्याग और बलिदान की बेला में कभी पीछे नहीं रहेंगे।"

इसी सम्बोधन के बाद हिन्दी के लिए विश्व मंच की रूपरेखा बनने लगी थी। हमने 1975 से 2015 तक कुल 10 विश्व हिन्दी सम्मेलन किये जो इस प्रकार से है-

1. प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन - 1975 नागपुर महाराष्ट्र, भारत
2. द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलन - 1979, मॉरीशस
3. तृतीय विश्व हिन्दी सम्मेलन - 1983, दिल्ली, भारत
4. चतुर्थ विश्व हिन्दी सम्मेलन - 1993, पोर्टलुई, मॉरीशस
5. पंचम विश्व हिन्दी सम्मेलन - 1996, पोर्ट ऑफ स्पेन, ट्रिनीडाड टोबैको
6. षष्ठम् विश्व हिन्दी सम्मेलन - 1999, लन्दन, ब्रिटेन
7. सप्तम् विश्व हिन्दी सम्मेलन - 2003, पारामारीबो, सूरीनाम
8. अष्टम् विश्व हिन्दी सम्मेलन - 2007 न्यूयार्क, अमेरिका
9. नवम् विश्व हिन्दी सम्मेलन - 2012 जोहान्सबर्ग, दक्षिण अफ्रीका

10. दशम् विश्व हिन्दी सम्मेलन - 2015, भोपाल, भारत

दसवाँ विश्व हिन्दी सम्मेलन के अलावा उपर्युक्त सभी में हिन्दी साहित्य, पत्र-पत्रिकाएँ आदि की बात पर जोर दिया जा रहा था जबकि दसवें सम्मेलन में हिन्दी की भाषायी ताकत बढ़ाने पर अधिकाधिक जोर दिया गया। राजनीतिक इच्छाशक्ति के कारण ही यह सम्मेलन अत्यधिक सफल रहा। कहीं-न-कहीं हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने की मुहिम भी मौन रूप से मुखर हो रही थी।

सभी प्रमुख मंत्रालयों के मंत्री वहाँ मौजूद रहे जैसे विदेश मंत्री सुषमा स्वराज, गृहमंत्री राजनाथ सिंह, मानव संसाधन विकास मंत्री स्मृति ईरानी और स्वयं प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी।

सुषमा स्वराज ने स्पष्ट कहा कि "यदि कोई विदेशी उस देश की भाषा में ही बात करेगा और दुभाषिया की मदद लेगा तो मैं भी हिन्दी में बात करूँगी और दुभाषिया की मदद लूँगी किन्तु यदि वह अंग्रेजी में बोलेगा तो मुझे अंग्रेजी में जवाब देना चाहिए और मैं यह कर रही हूँ।" इसके अतिरिक्त उन्होंने हिन्दी को कारोबारी रूप देने की जरूरत पर बल दिया।

इसी प्रकार प्रधानमंत्री ने भी अपने भाषण में आम भारतीय के द्वारा बोले जाने वाले शब्द, जो हिन्दी के नहीं हैं, किन्तु अब वे शब्द बहुतायत से प्रयुक्त किये जा रहे हैं, पर कहा कि यद्यपि हिन्दी के शिक्षक, विद्वान उसे हिंग्लिश कहकर उससे परहेज करते हैं किन्तु अंग्रजी मिश्रित हिन्दी से परहेज नहीं बल्कि उसे अपनाने की जरूरत है। जैसे मार्केट, फेस्टिवल, कॉलेज, स्कूल, वर्कशॉप आदि। उनका कहना था कि जब भाषा बचेगी तब तो साहित्य बचेगा। यानी साहित्यकारों का वजूद भाषा से है, भाषा जीवित रहेगी तो ही साहित्य की पहचान होगी वरना संस्कृत की तरह हिन्दी भी केवल विशेषज्ञों तक ही सीमित रह जायेगी।

आज विश्व में भारत एक बाजार है। अतः हिन्दी को इसे भुनाना होगा। भाषा को आम आदमी की मिल्कियत बनाना चाहिए जो मार्केट का एक अहम हिस्सा है। सम्मेलन में मुद्दे की बात यह थी कि हिन्दी का आधुनिक और तकनीकी स्वरूप, उसका मोबाइल और कम्प्यूटर में प्रयोग और उससे भी अहम था हिन्दी के डिजिटल व रोजगारोन्मुखी होने पर चर्चा, जिसने आयोजन को एक बेहतर मुकाम पर ला खड़ा किया।

विदेशी कम्पनियाँ हिन्दी की उपयोगिता को पहचान कर अपने व्यापार में हिन्दी का उपयोग कर रही हैं जिससे रोजगार के नये दरवाजे खुल रहे हैं। इस समारोह में गूगल, माइक्रोसॉफ्ट, एप्पल, सीडेक जैसी बड़ी नामी-गिरामी कम्पनियों के अधिकारियों तथा प्रतिनिधियों ने हिन्दी के लिए अपनी योजनाएँ, प्रदर्शनी और भाषणों के जरिये बतायी। मोबाइल और इण्टरनेट पर कैसे हिन्दी का प्रयोग किया जाय, यह भी इन कम्पनियों ने सिखाया।

साहित्य केन्द्रित न होकर भाषा केन्द्रित इस विश्व सम्मेलन में 39 देशों के लगभग 6000

प्रतिनिधियों तथा भारत के हिन्दी प्रेमी लगभग 6000 की संख्या में उपस्थित हुए और निम्न 12 विषयों पर चर्चा करके परिणाम निकाले गये-

1. विदेश नीति में हिन्दी
2. प्रशासन में हिन्दी
3. विज्ञान में हिन्दी
4. सूचना प्रौद्योगिकी में हिन्दी
5. न्यायालयों में हिन्दी तथा प्रान्तीय भाषाएँ
6. गिरमिटिया देशों में हिन्दी
7. अन्य भाषा-भाषी राज्यों में हिन्दी
8. विदेशों में हिन्दी शिक्षण की सुविधा
9. भारत में विदेशियों के लिए हिन्दी अध्ययन की सुविधा
10. हिन्दी पत्रकारिता
11. देश-विदेश में प्रकाशन सम्बन्धी समस्याएँ-समाधान
12. हिन्दी संचार माध्यमों में भाषा की शुद्धता।

दसवें विश्व हिन्दी सम्मेलन के दो वर्षों बाद आज की स्थिति में बड़ा बदलाव देखने को मिला है। भारत के हिन्दी प्रदेशों में सरकारी कामकाज में लगभग 70 से 80 फीसदी कार्य हिन्दी में हो रहे हैं। कार्यालयों, स्कूलों, कॉलेजों, विश्वविद्यालयों को स्पष्ट आदेश है कि सरकारी सहायता चाहिए तो हिन्दी में प्रपोजल भेजें। यहाँ तक कि कृषि विश्वविद्यालयों, तकनीकी संस्थानों, मेडिकल कॉलेजों में भी यदि शोध-कार्य में वित्तीय सहायता के लिए प्रपोजल सहित सभी पत्राचार हिन्दी में करने की अनिवार्यता हो रही है। राजनीतिक इच्छाशक्ति का ही परिणाम है कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा पहले जो पत्र अंग्रेजी में भेजे जाते थे अब वे पत्र अंग्रेजी तथा हिन्दी दोनों में आने लगे हैं। जनसामान्य में अंग्रेजी का क्रेज पूर्ववत् ही है। अंग्रेजी स्कूलों की फीस बढ़ती जा रही है, परन्तु धीरे-धीरे अंग्रेजी को एक भाषा के रूप में सीखने की इच्छा बलवती होगी अवश्य, किन्तु मातृभाषाओं की कीमत पर नहीं।

न्यायालयों में कामकाज अंग्रेजी में इसलिए होता है कि कोई हिन्दी के शब्द सीखने की जहमत क्यों उठाये, किन्तु वहाँ भी स्थितियाँ बदल रही हैं। उ.प्र. हाई कोर्ट में प्रेमशंकर गुप्त जैसे न्यायाधीशों ने 4000 से अधिक केसों का निर्णय हिन्दी में दिया। अहिन्दी प्रान्तों में अवश्य अभी अधिक सुधार की आवश्यकता है जिसे प्रान्तीय सरकारों पर ही छोड़ दिया जाना चाहिए। महात्मा गाँध

ी ने जब राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा की शुरुआत की थी तो लगभग 15000 स्वयंसेवी सदस्यों ने सब कुछ छोड़कर केवल हिन्दी सिखाने का मिशन लेकर लगभग 1 करोड़ लोगों को हिन्दी सिखाई थी तो कुछ ऐसा ही मिशन लेकर हिन्दी वालों को अहिन्दी भाषियों के बीच जाना होगा, खुलेमन से उनका डर दूर करना होगा। उन्हें लगता है कि प्रदेश के लिए मातृभाषा, देश-विदेश के लिए अंग्रेजी परन्तु यह गणित बहुत हानिकारक है पूरे देश की प्रान्तीय भाषाओं के लिए।

मान लीजिए एक हिन्दीभाषी अंग्रेजी सीखकर तमिलनाडु गया तो तमिल का क्या फायदा हुआ। इसी स्थान पर यदि वह व्यक्ति तमिल के 10 वाक्य सीखता तो देश की एक भाषा बढ़ती। इसी तरह तमिलनाडु का व्यक्ति उत्तर भारत आया और अंग्रेजी से काम चला लिया तो हिन्दी का नुकसान हुआ, अंग्रेजी फायदे में रही।

हमें यह समझना होगा कि प्रान्तीय भाषाओं की दुश्मन हिन्दी नहीं है, अंग्रेजी है। वह ही सभी प्रान्तीय भाषाओं के विकास को रोक रही है। प्रान्तीय भाषाओं से हिन्दी की लड़ाई राजनीति प्रेरित है यह जिस दिन भारतीय समझ लेंगे उसी दिन हिन्दी अपने देश की रानी होगी।

संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा - हिन्दी

संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा बनने के लिए पहली शर्त है उसके बोलने वालों की संख्या बल और भाषाई समृद्धि साहित्य का भण्डार भरा-पूरा हो। जबकि संयुक्त राष्ट्र संघ में शामिल 6 भाषाएँ हैं- अंग्रेजी, रूसी, चीनी, फ्रेंच, स्पेनिश और अरबी।

उक्त भाषाओं में केवल अंग्रेजी और चीनी ही संख्या बल और अन्य शर्तों को पूरा करती हैं। बाकी भाषाएँ कैसे शामिल हुई हैं, ये अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की दादागिरी का परिणाम है।

वस्तुतः संयुक्त राष्ट्र संघ में हिन्दी को मान्यता दिलाने का सबसे उपयुक्त समय यही है। आज हिन्दी अपने अनुवाद विज्ञान के द्वारा ज्ञान-विज्ञान, तकनीकी में कदम जमा रही है। ई-मेल, ई-कामर्स, ई-बुक, इण्टरनेट, एस.एम.एस., वेब ट्विटर ब्लाग, आदि के जरिये अपने को मजबूत बना रही है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया में अंग्रेजी के साथ हिन्दी का भी उचित दिशा में विकास होगा। हिन्दी में होने वाले शिक्षण, प्रशिक्षण और अनुसंधान की गति बढ़ेगी तथा अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों जैसे UNSC/UNICEF/UNESCO/UNIDO में भी जगह मिलने की राह आसान होगी।

इन विश्व मंचों पर हमारे प्रतिनिधि देश की भाषा में बात करेंगे तो देशवासियों का आत्मगौरव बढ़ेगा और अंग्रेजी भाषा की गुलाम मानसिकता से छुटकारा मिलेगा। उक्त सन्दर्भों में विदेश नीति के मोर्चे पर हिन्दी के महत्त्व को समझते हुए भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद् ने विश्व के अनेक देशों के विश्वविद्यालयों में देशी तथा विदेशी छात्रों को हिन्दी पढ़ाने के लिए भारतीय अध्ययन पीठ (Indian Culture and Languages Study Centre) की स्थापना पर विशेष बल दिया गया है।

वर्तमान में ये सेण्टर्स भारत की सांस्कृतिक पहचान को दुनिया के सामने ला रहे हैं और भारत की विदेश नीति में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रहे हैं।

भारत इस समय दुनिया का सबसे युवा देश है। ये युवा प्रशिक्षित पेशेवर होकर पूरे विश्व में उपलब्ध हो रहे हैं। जबकि अन्य देशों में 50 से 60 वर्ष की उम्र के लोगों की कार्यक्षमता निश्चित रूप से कम हो रही है। भारत की तरुण आबादी को देखकर ही चीन को अपनी वन चाइल्ड की नीति त्यागनी पड़ी। भारत आर्थिक दुनिया का केन्द्र बनने की प्रक्रिया में है। वहीं हिन्दी स्वत: विश्व मंच पर प्रभावी हो रही है, तभी बहुत पहले ही अमेरिकी प्रशासन अपने नागरिकों को चेतावनी दे चुका है-

"21वीं शताब्दी में राष्ट्रीय सुरक्षा एवं समृद्धि के लिए अमेरिकी नागरिकों को हिन्दी सीखनी चाहिए।"

अत: सभी छोटी-बड़ी समस्याओं को पार करते हुए हिन्दी का सूरज एक दिन विश्व आकाश पर अपनी ज्योति रश्मियों के साथ अवश्य उदित होगा। इसी आशा और विश्वास के साथ यह पंक्तियाँ समर्पित हैं। आप सभी सुधी जनों को, जो भारत में हिन्दी की अलख जगाये हुए हैं-

एक दीपक नेह का विश्वास का
उर में जलाओ तो तिमिर ढल जायेगा
उस एक दीपक से जगेगी रोशनी
कि विश्व सारा ज्योति पर्व मनायेगा।

\+ + + +

मार्ग काँटो से भरा है चल रहे हैं, हम चलेंगे,
औ उजाला बांटने को, हम निरन्तर ही जलेंगे।

हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार में प्रादेशिक हिन्दी सेवी संस्थाओं का योगदान

डॉ. आद्या प्रसाद द्विवेदी*

किसी भी राष्ट्र को जोड़ने के लिये एक भाषा का होना बहुत जरूरी है। और हिन्दी में वो सभी गुण समाहित है जो पूरे देश को एक सूत्र में बाँध सकती है। भारतीय भाषाओं के बीच हिन्दी की एक अलग पहचान है। इसके कई कारण भी है। भारतीय भाषाओं के संदर्भ में यह दृष्टव्य है कि अन्यान्य भाषाओं के नाम अपने अपने क्षेत्र से जुड़े हुये हैं, वहीं हिन्दी किसी क्षेत्र विशेष से जुड़ी भाषा नहीं है। कश्मीरी कश्मीर प्रान्त से जुड़ी है, पंजाबी पंजाब से, बांग्ला बंगाल से, मराठी महाराष्ट्र से, असमिया असम से, तमिल तमिलनाडु से, मलयालम केरल से, कन्नड़ कर्नाटक से और गुजराती भाषा गुजरात प्रान्त से जुडी हुई है, वहीं हिन्दी किसी क्षेत्र विशेष तक सीमित नहीं है। यह पूरे भारत वर्ष की भाषा है। क्षेत्र विस्तार की दृष्टि से हिन्दी देश के सबसे बड़े भूभाग की भाषा है। स्वतंत्र भारत मे आज हिन्दी को देश की राजभाषा के रूप में संविधान के द्वारा मान्यता मिल चुकी है। लेकिन दुर्भाग्य से आज भारत वर्ष के अनेक अहिन्दी भाषी राज्यों द्वारा यह कहा जा रहा है कि हिन्दी देश के नागरिकों पर जबरन लादी जा रही है। यह सेक्युलर तर्क हो सकता है यथार्थ नहीं। यह सत्य है कि सामाजिक यथार्थ के रूप में भाषा हमे जोड़ती भी है और तोड़ती भी है। वह जोड़ती है तो परम्परा और संस्कृति की जड़े मजबूत होती हैं किन्तु यदि उसका ठीक उपयोग नहीं हुआ तो दूरी बढ़ाकर राज्यों के निर्माण और क्षेत्रीयता को बढ़ाकर हिंसा तक पैदा कर देती है। हिन्दी एक ऐसी भाषा है जो पूरे देश में राष्ट्रीय एकता को स्थापित करने की क्षमता रखती है।

देश की एकता को बनाये रखने के लिये एक राष्ट्र भाषा की अनिवार्यता को स्वाधीनता संघर्ष के दौरान ही देश के अनेक बड़े नेताओं ने बहुत पहले ही पहचान लिया था। इस ऐतिहासिक तथ्य से आजकल के इतिहास वेत्ता भी सहमत है कि समूचे देश को जोड़ने वाली सम्पर्क भाषा के अभाव के कारण ही भारत का प्रथम स्वाधीनता संग्राम (1857) पराजय को प्राप्त कर गया था। राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी को फैलाने का श्रेय राष्ट्रपिता महात्मा गांधी को है जिन्होंने सर्वप्रथम 1917 में

*पालती कुन्ज, सिद्धार्थ इन्क्लेव विस्तार, एच.आई.जी.-I। 32, तारामण्डल, गोरखपुर।

भड़ौच (गुजरात) मे गुजरात शिक्षा परिषद के सभापति पद से भाषण देते हुए राष्ट्रभाषा बनने की हिन्दी की क्षमता को इस तरह स्पष्ट कर दिया था। *''बहुभाषीय भारतवर्ष में केवल हिन्दी ही एक भाषा है जिसमें वे सभी गुण पाये जाते हैं जिससे यह पूरे देश को एकसूत्र में जोड़ सकती है।''* राष्ट्रपिता गाँधी जी के अलावा राजाराम मोहन राय, केशव चन्द सेन, स्वामी दयानन्द सरस्वती, ईश्वरचन्द विद्यासागर, सुभाष चन्द बोस जैसे मनीषी भी राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी के समर्थक थे। विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि इनमें से किसी की भाषा हिन्दी नहीं थी। इसी सम्मेलन के एक साल बाद सन् 1918 में इन्दौर में हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग का राष्ट्रीय अधिवेशन हुआ था, जिसमें दक्षिण भारत में हिन्दी के प्रचार-प्रसार हेतु एक प्रस्ताव पारित किया गया। इस प्रस्ताव को सार्थक रूप देने के लिये गाँधी जी ने अपने पुत्र देवदास गाँधी को हिन्दी के प्रचार के लिये चेन्नई भेजा। वहाँ देवदास गाँधी के प्रयास से दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की स्थापना हुई। इसके बाद दक्षिण के तीन अन्य राज्यों में भी दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की शाखायें स्थापित हुई। देश प्रेम एवं देश की भाषा प्रेम से अभिभूत कई व्यक्ति एवं संस्थायें इस यज्ञ में सम्मिलित हुई और दक्षिण मे राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रचार-प्रसार तीव्र गति से होने लगा। महात्मा जी यद्यपि अहिन्दी भाषी थे किन्तु हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाकर इसी के माध्यम से अपने स्वतंत्रता संघर्ष को आगे बढ़ाते हुए अपने लक्ष्य को प्राप्त किये। गाँधी जी ने हिन्दीतर प्रदेशों में अनेक हिन्दी प्रचार सभाओं की स्थापना की जिनके माध्यम से उन प्रदेशों में लाखों लोगों ने हिन्दी पढ़ा और राष्ट्र की मुख्यधारा में आकर राष्ट्रीय विकास में सहभागी बने। गाँधी जी अपने प्रतिदिन की प्रार्थना सभाओं में हिन्दी में ही भजन करते और अपना प्रवचन भी हिन्दी में ही देते थे। हिन्दीतर प्रदेशों में इसका प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा। इससे जो भी गाँधी जी के अनुयायी थे वे हिन्दी में अपने को दक्ष करने लगे। गाँधी विचार के प्रबल समर्थक और उनके प्रिय शिष्य विनोबा भावे जी मराठी भाषी होते हुए भी हिन्दी के कट्टर समर्थक बने। उन्होंने जीवन भर देवनागरी लिपि और हिन्दी के लिये संघर्ष किया। इस प्रकार हिन्दी अपनी विशेषता, विस्तार एवं गाँधी जी के प्रयासों तथा जनसमर्थन के कारण आजादी की लड़ाई का सिर्फ माध्यम ही नहीं बनी बल्कि जनमानस में राष्ट्रभाषा के रूप में अवस्थित होती गयी।

पूज्य महात्मा जी के सलाह से दक्षिण भारत में हिन्दी के प्रचार-प्रसार हेतु जिन संस्थाओं की स्थापना हुई उनमें कर्नाटक का अहम योगदान है। आजादी की लड़ाई के दौरान कर्नाटक के हिन्दी प्रचारक हाथ में लालटेन लिये, बगल में चटाई दबाये, खादी धारण करके गांव-गांव में जाते थे और लोगों को राष्ट्रीयता का बोध कराने के लिये हिन्दी भाषा ज्ञान दान निःस्वार्थ भाव से करते थे। इसके फलस्वरूप कर्नाटक में हिन्दी प्रचार हेतु अनेक संस्थाओं ने जन्म लिया। उसमें प्रमुख रूप से दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार समिति, मैसूर रियासत हिन्दी प्रचार समिति, मैसूर हिन्दी प्रचार परिषद, कर्नाटक हिन्दी प्रचार सभा गुलबर्गा, हिन्दी प्रचार सभा कोडगू, हिन्दी प्रचार सभा तुमकूर, महिला हिन्दी सेवा समिति बंगलौर, हिन्दी प्रचार सभा बेलगांव, कर्नाटक प्रान्तीय हिन्दी प्रचार सभा धारवाड़ का नाम

विशेष उल्लेखनीय है।[1] वर्तमान में कर्नाटक विश्वविद्यालय, मैसूर विश्वविद्यालय, शिव मोगा विश्वविद्यालय, बंगलौर विश्वविद्यालय, मंगलूर विश्वविद्यालय तथा गुलबर्गा विश्वविद्यालय भी अपने-अपने स्तर से हिन्दी विभागों के द्वारा हिन्दी के प्रचार-प्रसार में योगदान दे रहे हैं। इस संदर्भ में डॉ. तेजस्विनी कट्टीमनी पूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष कर्नाटक विश्वविद्यालय धारवाड़ का यह कथन भी धातव्य है कि ''हिन्दी विश्व की सबसे सरल भाषा है। इसका मुख्य कारण यह है कि यह जैसी बोली जाती है वैसे ही लिखी जाती है। दुनिया की महान कहलाने वाली अंग्रेजी, फ्रांसीसी, जर्मन और रूसी भाषाओं में यह विशेषता नहीं है। यह विशेषता केवल हिन्दी में है जहाँ-जहाँ हिन्दी का विस्तार होता जा रहा है, वैसे-वैसे यह विश्व भाषा का रूप लेती जा रही है।''[2]

कर्नाटक की ही भाँति आन्ध्राप्रदेश में एक ओर जहाँ दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद ने हिन्दी के प्रचार-प्रसार में महनीय योगदान किया है वहीं हैदराबाद से निकलने वाली पत्रिका ''दक्षिण समाचार'' का भी अहम योगदान है। इसके सम्पादकों में मनीन्द्र जी तेलगू भाषा के साथ-साथ हिन्दी भाषा के प्रबल समर्थक थे। मुनीन्द्र जी की निष्ठा हिन्दी के साथ अन्य भारतीय भाषाओं के प्रति भी थी। अपने पत्र दक्षिण समाचार में हिन्दी को गतिमान बनाने के लिये हिन्दी भाषा सम्बन्धी गतिविधियों की जानकारी तो देते ही थे उसमें हिन्दी के नये प्रकाशनों के समाचार, हिन्दी पुस्तकों की समीक्षायें, लिपि, वर्तनी पर विचार, अनुदित रचनाओ को भी देते रहते थे।[3]

आन्ध्रा प्रदेश की ही भाँति दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा केरल (एर्णाकुलम) ने भी केरल में हिन्दी की अलख जगाने का भरपूर कार्य किया और आज भी उत्साह के साथ कर रहे हैं। इस कार्य में कालीकट विश्वविद्यालय और कोचीन विश्वविद्यालय की भी अहम भूमिका है। कोचीन विश्वविद्यालय की डॉ. एन.जी. देवकी आज इस कार्य को पूर्ण मनोयोग के साथ सम्पादित कर रही हैं।

दक्षिण भारत के अतिरिक्त पूर्वोत्तर भारत में भी हिन्दी के प्रचार-प्रसार हेतु कई संस्थायें सक्रिय हैं। हिन्दी प्रचार आन्दोलन का सूत्रपात पूर्वोत्तर भारत में आजादी मिलने से काफी पूर्व ही हो गया था। इसके प्रारम्भिक दौर में कतिपय हिन्दी जानने वाली ईसाई मिशनरियों से सम्बन्धित व्यक्तियों की भूमिका रही। चूँकि पूर्वोत्तर भारत को शेष राष्ट्र से जोड़ने वाला असम प्रान्त ही है। इस कारण भारत की केन्द्रीय भूमि से आने वाली कोई भी लहर सबसे पहले असम को ही आन्दोलित करती है। हिन्दी प्रचार आन्दोलन की पहली किरण ने भी सर्वप्रथम असम में ही अपना प्रकाश बिखेरा। कहा जाता है कि किसी ईसाई धर्म प्रचारक ने हिन्दी के प्रथम पत्र के रूप में प्रचारित ''उद्न्त मार्तण्ड'' से पहले एक हिन्दी पत्र का प्रकाशन किया था। इसके मूल में उन असम भाषी लोगों के बीच ईसाई मान्यताओं का प्रचार करने की भावना रही होगी जो पर्वतीय क्षेत्रों में रहने के कारण असमिया भाषा को सम्पर्क भाषा के रूप में प्रयोग नहीं करते थे किन्तु हिन्दी को कुछ-कुछ अंश प्रयोग करते थे।

इतिहास से इस बात की पुष्टि होती है कि तुलसी के रामचरित मानस का भारतीय भाषाओं में सबसे पहले पहला अनुवाद असमिया में ही हुआ था।[4] असम के विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न जातियों, जनजातियों के बीच रामकथा प्रचलन है जिसे स्थानीय संस्कृति के अनुसार कुछ नवीन प्रसंगों और उद्‌भावनाओं से जोड़ दिया गया है। इस रामकथा के साथ हिन्दी इन सुदूर क्षेत्रों में बहुत पहले पहुँच चुकी थी। हिन्दी प्रचार में इसाई मिशनरियों के अतिरिक्त आर्य समाज, सनातन हिन्दू सभा आदि धार्मिक संस्थाओं के अतिरिक्त कुछ स्वयंसेवी संस्थाओं ने भी हिन्दी प्रचार आन्दोलन का कार्य इन पूर्वोत्तर क्षेत्रों में किया। हिन्दी पत्रकारिता का विकास भी हिन्दी प्रचार आन्दोलन के साथ-साथ हुआ। हिन्दी प्रचार संस्थाओं के सामने एक ओर दूर-दूर फैली अपनी शाखाओं, शिक्षण संस्थाओं, कार्यकर्ताओं व सहायकों के साथ सम्पर्क सूत्र बनाने, उनकी गतिविधियों को एक दूसरे तक पहुँचाने, स्थानीय नव लेखकों को रचनात्मक प्रतिभा को प्रोत्साहन देने का लक्ष्य था तो दूसरी ओर अपने-अपने कार्यक्षेत्र के इतिहास, साहित्य और संस्कृत को हिन्दी भाषा में लाकर उसे अखिल भारतीय स्तर पर पहचान और प्रतिष्ठा दिलाने का महत्वाकांक्षी स्वप्न भी थे। इसके लिये हिन्दी प्रचार से जुड़ी संस्थाओं में ही नहीं बल्कि व्यक्तियों और सामाजिक व जाति जागरण से सम्बद्ध संस्थाओं से भी पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन करके हिन्दी के प्रचार में योगदान दिया। असम प्रदेश से पूरे पूर्वोत्तर भारत में सर्वाधिक पत्रिकाओं का प्रकाशन किया गया। इनमें से कुछ पत्रिकाओं के नाम इस प्रकार हैं- राष्ट्र सेवक, प्राच्य भारती, वालार्क, असम प्रदीप, रणभेरी, पूर्व ज्योति, शंखनाद, पूर्व गन्ध, जागृति, जैन पार्षद, युवा दर्पण, लोक संदेश आदि। गुवाहाटी, डिब्रूगढ़, तिनसुकिया, तेजपुर, सिल्चर आदि से प्रकाशित होने वाली इन पत्रिकाओं के हिन्दी भाषा के साथ-साथ साहित्यिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में बहुत महत्वपूर्ण कार्य किया।[5]

हिन्दी जनमानस की राष्ट्रभाषा है स्वाधीनता की लड़ाई में देश की जनता ने इसे इसी रूप में स्वीकारा और अपना समर्थन भी दिया। इसी समर्थन से उत्प्रेरित होकर तथा हिन्दी की सहजता एवं सरसता तथा इसकी स्वाभाविक क्षमता को ध्यान में रखकर आजाद भारत के कर्णधारों ने उत्तर से लेकर दक्षिण तक हिन्दी और देवनागरी के प्रचार-प्रसार की सम्यक् व्यवस्था थी। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा चेन्नई, आन्ध्रा प्रदेश (हैदराबाद), केरल (एर्णाकुलम), कर्नाटक (धारवाड़), मध्य प्रदेश हिन्दी प्रचारणी सभा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग नागपुर, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति (वर्धा) नागरीय प्रचारिणी सभा वाराणसी, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान आगरा और इसकी चार क्षेत्रों में फैली हुई शाखायें, अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय वर्धा (महाराष्ट्र), राष्ट्रभाषा प्रचार समिति अहमदाबाद (गुजरात) आदि इसके प्रमाण हैं। प्रोफेसर सुरेश कुमार ने हिन्दीतर प्रदेश की प्रचारात्मक गतिविधियों को हिन्दी को राष्ट्रभाषा की प्रवृत्ति मानते हुये इसे एक मनो सामाजिक यथार्थ कहा है।[7]

हिन्दी के प्रचार-प्रसार में हिन्दी क्षेत्र की दो प्रमुख संस्थाओं काशी नागरीय प्रचारिणी सभा

और प्रयाग का हिन्दी साहित्य सम्मेलन की भी अहम भूमिका है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग में सन् 1912 में कलकत्ता में आयोजित अपने राष्ट्रीय अधिवेशन में अपने कार्यकर्ताओं को सलाह दिया था ''हिन्दी के प्रचार उपदेशको का काम यह होगा कि भिन्न-भिन्न नगरों और गांवो में जाकर लोगों को हिन्दी भाषा की सरलता समझाना और हिन्दी भाषी क्षेत्र के लोगों को विश्वास दिलाना है कि हिन्दी के प्रचार से अन्यान्य प्रान्तिक भाषाओं को कुछ हानि नहीं है। जैसे अंग्रेजी के प्रचार से भारत में किसी भी प्रान्तिक भाषा को हानि नहीं पहुँची बल्कि उसकी उन्नति हुई है उसी प्रकार हिन्दी के प्रचार से हानि के बदले लाभ ही होगा। अपनी-अपनी मातृभाषा को माता समझकर उचित आदर, सत्कार और पूजा किये करो पर हिन्दी को रानी के रूप में पूजा करना स्वीकार कर लो।[8]

हिन्दी के प्रचार-प्रसार में धार्मिक संस्थाओं का योगदान-

स्वाधीनता की लड़ाई के दौरान ही अनेक धार्मिक संस्थाओं ने हिन्दी के प्रचार-प्रसार में अपनी भूमिका प्रस्तुत की है। इन धार्मिक संस्थाओं में स्वामी दयानन्द सरस्वती का आर्य समाज, राजाराम मोहन राय का ब्रह्म समाज तथा ईसाई मिशनरियों का उदय प्रमुख रहा। ये तीनों ही संस्थायें अहिन्दी भाषा भाषियों की थी। स्वामी दयानन्द गुजराती थे, राजामोहन राय बंगाली थे और ईसाई मिशनरियां अंग्रेजी भाषित थे। यद्यपि इनमें किसी के द्वाग हिन्दी भाषा के प्रचार में कोई सहयोग मिलने की संभावना नहीं थी परन्तु इन सभी ने हिन्दी प्रचार में जो सहयोग दिया है उसे ऐतिहासिक कहा जायेगा। इन सभी संस्थाओं में आर्य समाज की अहम भूमिका है। ब्रह्म समाज के वरिष्ठ नेता केशव चन्द्र सेन के सुझाव पर स्वामी दयानन्द सरस्वती ने संस्कृत भाषा में लिखना और प्रवचन देना बन्द कर हिन्दी भाषा में अपना कार्य सम्पादित किया। ''सत्यार्थ प्रकाश'' सहित उनकी सभी पुस्तकें हिन्दी में ही लिखी गयी है। आर्य समाज के प्रादुर्भाव से हिन्दी का एक प्रकार से नवजागरण प्रारम्भ हो गया। ब्रह्म समाज के वरिष्ठ प्रचारक केशवचन्द सेन भी हिन्दी के कट्टर समर्थक थे। उन्होंने आज से लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्व हिन्दी को राष्ट्रभाषा और सम्पर्क भाषा घोषित कर इसके प्रचार-प्रसार में सक्रिय योगदान दिया था। 'इण्डियन मिरर' के 14 जनवरी 1877 के अंक में प्रकाशित हुआ था कि कोलकाता में सभी धार्मिक नेताओं का एक सम्मेलन इस आशय से बुलाया गया था कि तत्कालीन धार्मिक एवं समाज सुधारकों में किस तरह समन्वय स्थपित कर देश की एकता और हिन्दी भाषा को दृढ़तर प्रदान की जाय। इस सम्मेलन में जिन नेताओं ने भाग लिया था उनमें ब्रह्म समाज के केशवचन्द सेन, मुसलमानों के प्रसिद्ध नेता सर सैय्यद अहमद खाँ, प्रसिद्ध वेदान्ती मुन्शी कन्हैया लाल माणिक, मुन्शी इन्द्रमणि (आर्य समाज मुरादाबाद), हरीश चन्द्र चिन्तामणि (मुम्बई) और पंडित मनफूल (कश्मीर) प्रमुख थे। यद्यपि उस सम्मेलन की कार्यवाही कही उपलब्ध नहीं है परन्तु उस सम्मेलन के छपे मेनोपोस्टो से पता चलता है कि सम्मेलन में हिन्दी भाषा और राष्ट्रीय एकता जैसे विषयों पर व्यापक और उदार दृष्टिकोण से विचार-विमर्श हुआ।[10]

हिन्दी केवल भाषा मात्र नहीं है अपितु इसमें देश की सामासिक संस्कृति को सजो कर रखने की अद्‌भुत क्षमता भी है। इस भाषा से देश में भारतीय संस्कृति की गरिमा मुखरित होती है। यह देश में राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकता की एक विशिष्ट पहचान भी है। बेल्जियम निवासी फादर कामिल बुल्के की दृष्टि में ''हिन्दी में विकास की संभावना कल्पनातीत हैं। संतुलन एवं समन्वय की विशेषता रखने वाली भारतीय संस्कृति को हिन्दी के द्वारा ही विश्व तक पहुँचाया जा सकता है।'' यह विश्व शान्ति के लिये आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है। अन्त में एक बात और कहनी है कि आज हाथ से फिसलती हुई नयी पीढ़ी को अपनी भाषा से जोड़े रखने के लिये बच्चों को शिक्षा के क्षेत्र में हिन्दी माध्यम की आवाज बुलन्द किये बिना हिन्दी पर बड़ी बहस करने से कोई सार्थक उपलब्धि नहीं होगी। भाषा को रोजगार और बेहतर रोजगार के साथ सम्मान से जोड़े बिना नयी पीढ़ी को आकर्षित करना सम्भव नहीं होगा।

संदर्भ -

1. हिन्दी अनुशीलन अक्टूबर-मार्च (2010) पृष्ठ-40
2. हिन्दी अनुशीलन जून-दिसम्बर (2006) पृष्ठ-34
3. भारतीय भाषा पत्रिका (हैदराबाद) 2000 ई. पृष्ठ-48
4. भारतीय भाषा पत्रिका 2000 ई. पृष्ठ-145
5. भारतीय भाषा पत्रिका 2000 ई. पृष्ठ-146
6. भारतीय भाषा पत्रिका 2000 ई. पृष्ठ-146
7. हिन्दी जाति एवं राष्ट्रभाषा हिन्दी के विविध संदर्भ-सम्पादक रघुवंश मणि पाठक पृष्ठ-114
8. सम्मेलन पत्रिका पृष्ठ-145
9. हिन्दी भाषा के विविध आयाम (डॉ. राजेश्वरी शान्डिल्य) पृष्ठ 128
10. हिन्दी भाषा के विविध आयाम (डॉ. राजेष्ठवरी शान्डिल्य) पृष्ठ 129

स्वतंत्रता के बाद हिन्दी की विकास यात्रा

डॉ. मीनाक्षी सिंह*

आज हिन्दी लगभग संपूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप तथा दक्षिण पूर्वी एशियाई राष्ट्रों की संपर्क भाषा है। साथ ही इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि बड़ी जनसंख्या ऐसी है, जिसकी बोलियाँ या मातृभाषा भले ही हिन्दी ना हो लेकिन उनके लिए हिन्दी इतनी आत्मीय भाषा है कि वह सहज ही उसे दैनिक व्यवहार में अपनाए हुए हैं। यहां तक वह अपने संख्याबल के माध्यम से इस मीडिया प्रधान युग में विश्व व्यापार की सबसे बड़ी भाषा है। ऋषभदेव शर्मा का मत है कि आज हिन्दी के माध्यम से हम अपने विज्ञापन को दुनिया की बड़ी आबादी तक पहुंचा सकते हैं। सच तो यह है कि ग्लोबलाइजेशन या बाजारवाद के इस दौर में भाषाओं की भूमिका महत्वपूर्ण है। हिन्दी भाषा अपने भौगोलिक परिवेश में संस्कृति और जीवन शैली को नियोजित करती है और सामाजिक आर्थिक स्वातन्त्र के साथ विश्व मानवता को भी प्रभावित करती है। मेरा विचार है कि जब 16 प्रांतों से सोवियत संघ बना अथवा अनेक प्रान्तों से संयुक्त राष्ट्र अमेरिका बना है, तो विश्व की अनेक संस्कृतियों के योग से विश्व संस्कृति का निर्माण क्यों नहीं हो सकता? यह उदात्तता भारतीय संस्कृति में निहित है और यह लचीलापन हिन्दी भाषा में है जो विश्व बंधुत्व की भावना से सदैव ओत-प्रोत रही है। इसके लिए हमें जागरूक होना पड़ेगा क्योंकि भारत पर भूमंडलीकरण का वह शिकंजा कसता जा रहा है जो उसकी भाषा और संस्कृति के प्रति क्रूरता का व्यवहार कर रहा है।

भारत दुनियाभर के उत्पाद निर्माताओं के लिए एक बड़ा खरीदार है और उपभोक्ता बाजार है। इस क्रय-विक्रय की प्रक्रिया में भाषा की अहम भूमिका है जो खासकर हिन्दी की है। आज बाजार से लेकर विचार तक भूमंडलीकृत भाषा का प्रचार हो रहा है। इसलिए बोलियों का दायरा कम होता जा रहा है। मगर हिन्दी की संप्रेषण क्षमता इतनी ज्यादा है कि दूरदर्शन के विज्ञापनों से लेकर लोकप्रिय कार्यक्रमों तक हिन्दी बोली जाती है। हिन्दी अपनी समावेशी प्रकृति के कारण विस्तार के नए आयाम छू रही है, चाहे प्रिंट मीडिया हो या इंटरनेट के अन्य माध्यम हो। इसलिए हिन्दी ने संचार माध्यम की भाषा में जन भाषा का रूप धारण करके व्यापक जन स्वीकृति प्राप्त कर ली है। इस भाषा को विश्व की प्रथम सर्वाधिक व्यवहृत भाषा बनाने का कार्य भूमंडलीकरण और संचार माध्यमों के

*प्रवक्ता, महाप्राण निराला स्नातकोत्तर महाविद्यालय ओसियां-बीघापुर उन्नाव।

विस्तार से हो जाता है, तभी बहुराष्ट्रीय कंपनियों को भी हिन्दी और भारतीय भाषाओं के सहारे भारत के बजार में उतारना पढ़ रहा है। आमजन के माध्यम से, दुनिया भर में इंटरनेट के माध्यम से सबसे अधिक किताबें बिक रही हैं, तो यह मीडिया और साहित्य की दुश्मनी का नहीं, दोस्ती का मामला है। इंटरनेट ने लोगों के लिए नए पाठक वर्ग के दरवाजे खोले हैं और सूचना क्रांति द्वारा हिन्दी भाषा की अभिव्यक्ति और कौशल में श्री वृद्धि की है।

डॉ. ओमप्रकाश का कहना है कि *'हिन्दी, हिन्द के जन मन में पोषित लोकभाषा है।'* लोगों को यह जानना भी जरूरी है कि हिन्दी के मूल शब्दों की संख्या 2 लाख 50 हजार से अधिक है, वहीं अंग्रेजी में इसकी संख्या मात्र 10,000 है। हिन्दी ने विश्व की अनेक भाषाओं और बोलियों को आत्मसात किया है। इसमें आर्य एवं द्रविड़ परिवार की भाषाओं के साथ-साथ आदिवासी, स्पेनी, पुर्तगाली, जर्मन, फ्रेंच, अंग्रेजी, अरबी, फारसी, चीनी, जापानी आदि शब्दों का समावेश है। यह विश्व-समाज को समाहित कर चुकी है। भारत के अतिरिक्त हिन्दी मारीशस, फिजी, नेपाल, भूटान, सूरीनाम, बांग्लादेश, दक्षिण अफ्रीका, पाकिस्तान, श्रीलंका इत्यादि देशों में व्यापक रूप से बोली जाती है। इनके अतिरिक्त दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों-मलेशिया, सिंगापुर, इंडोनेशिया, थाईलैंड, कंबोडिया में हिन्दी केवल संपर्क भाषा के रूप में ही नहीं, बल्कि धार्मिक एवं सांस्कृतिक समारोह की भाषा है। विश्व के लगभग 50 से अधिक विश्वविद्यालयों में हिन्दी का पाठ्यक्रम निर्धारित हो चुका है।

महात्मा गांधी ने कहा था- *'मेरे लिए हिन्दी का प्रश्न स्वराज्य का प्रश्न है। अगर स्वराज्य अंग्रेजी बोलने वाले भारतीयों का और उन्हीं के लिए होने वाला हो तो निःसंदेह अंग्रेजी राष्ट्रभाषा होगी लेकिन यदि स्वराज्य करोड़ों भूखे मरने वालों और दलितों का हो, उनके लिए होने वाला हो तो हिन्दी ही एकमात्र राष्ट्रभाषा हो सकती है।'* **कामिल बुल्के** का कथन था- *'हिंदुस्तान भाषा का परिवार है। इसके अंतर्गत बूढ़ी दादी हैं-संस्कृत, इस संस्कृत रूपी बूढ़ी दादी की 22 बहुएं भारतीय भाषाएं हैं और इनकी दासी अंग्रेजी है।'* **पुरुषोत्तम दास टंडन** का कहना था- *'मैं हिन्दी का और हिन्दी मेरी है। हिन्दी के लिए मेरे पावर भी प्रस्तुत है। बिना भाषा की नींव दृढ़ किए स्वतंत्रता की नींव दृढ़ नहीं हो सकती।'* वह जानते थे कि किसी जाति संस्कृति की महत्ता पुस्तकों में जाकर शरण भले ही ले ले, शब्दों की नदी में कोई डूबता नहीं है और शब्दों की नाव से कोई पार नहीं होता।

गांधी जी ने कहा था- *'मैकाले ने शिक्षा की जो बुनियाद डाली वह सचमुच गुलामी की बुनियाद थी। यह कितने दुख की बात है कि हम स्वराज के बाद भी पराई भाषा में व्यवहार करते हैं। हिंदुस्तान को गुलाम बनाने वाले तो हम अंग्रेजी जानने वाले लोग ही हैं। राष्ट्र की हाय अंग्रेजों पर नहीं पड़ेगी बल्कि हम पर पड़ेगी।'*

उत्तर प्रदेश संस्थान, हिन्दी अकादमी, हरियाणा साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश साहित्य अकादमी, हिन्दी अकादमी दिल्ली एवं केंद्रीय साहित्य अकादमी जैसी कई संस्थाएं हैं जो हिन्दी के

प्रति अपने पूर्ण दायित्व का निर्वहन नहीं कर पा रही है, ना तो भारत के अंदर अन्य प्रांतीय भाषाओं से आत्मीयता जोड़ पा रही हैं, और ना ही वे विदेशों में हिन्दी के प्रचार-प्रसार को बढ़ावा देने में अपनी सही भूमिका दे पा रही हैं। अपने घोषित लक्ष्यों के प्रति विषय गंभीर नहीं है। वैभव सिंह समकालीन सरोकार में लिखते हैं- देश के प्रबुद्ध वर्ग ने जनता को हिन्दी का सस्ता-सा लालीपाप पकड़ाकर अंग्रेजी की मलाई खाने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ी है, और इसीलिए जिसे हम बार-बार राजनीतिक सत्ता उनकी बेरूखी कहते हैं, वह बेरूखी और कुछ नहीं हिन्दी के लिए सोची समझी अकर्मण्यता ही है।

अब विचारणीय विषय यह है कि भारतीय संस्कृति की गोद में पली-पोषी हिन्दी जो अपने देश के अनेक उप संस्कृतियों एवं उपभाषाओं के योग से अपना आकार ग्रहण करती है, वह विश्व-संस्कृति को आत्मसात करने की अद्‌भुत क्षमता लेकर इतनी विनम्र क्यों है? क्योंकि सदियों से इस संस्कृति ने विश्व मानवता के प्रति उदारमय होकर 'एकोहं द्वितीयोनास्ति' का पाठ पढ़ाया है। इस देश के ऋषि-मुनियों ने 'मनुष्य मात्र बंधु है, यही बड़ा विवेक है' कहकर समस्त जीवों के प्रति संवेदनशीलता प्रदर्शित किया है। यही कारण है कि आज हिन्दी अनेक भाषाओं के शब्दों, मुहावरों एवं ध्वनियों को ध्वनित करने में पूर्णता समर्थ है। हिन्दी का शब्दकोश बृहत्तर हुआ है, साहित्य विपुल और लोक मानस की विश्वस्तरीय संस्कृति भी बढ़ती जा रही है। चाहे व्यापार का क्षेत्र हो, व्यवसाय का हो या शिक्षा का, हिन्दी ने अपनी सामर्थ्य का परिचय देते हुए नये मानक स्थापित किए हैं। आज वह इंटरनेट के माध्यम से विश्व के अधिकांश देशों तक अकूत साहित्य एवं अन्य कला विज्ञान संबंधी जानकारियां लेकर खड़ी है जो लगभग 1 अरब 25 करोड़ हिन्दी भाषी व हिन्दी पढ़ने-जानने वाले लोगों को लाभान्वित कर रही है।

हिन्दी ही भारत या विश्व की एक मात्र भाषा है जो अपनी वैचारिक क्षमता के साथ एकता के सूत्र में बांधने में सहायक है। वह क्रमशः एक ऐसी विश्व भाषा का मंच तैयार कर रही है जिस पर वैश्वीकरण, उदारीकरण या भूमंडलीकरण की भविष्य में इमारत खड़ी होगी। उसने विश्व के अन्य देशों की भाषाओं को शुद्ध विचार देने के साथ-साथ एक नए विश्व निर्माण की प्रक्रिया से उसे जोड़ने की भूमिका तैयार की है और अलगाववादी शक्तियों तथा आतंकवादियों को भी मानवता का पाठ पढ़ाया है। इसलिए आज देश-विदेश में हिन्दी साहित्य पत्रकारिता, फिल्म, रेडियो, दूरदर्शन, संगणक, इंटरनेट आदि क्षेत्रों में सक्षम भाषा के रूप में प्रयुक्त हो रही है।

ऐसा प्रतीत होता है कि रोजगारपरक शिक्षा पर जोर देने के कारण भारत की अधिकांश जनसंख्या प्राथमिक विद्यालय से ही बच्चों को अंग्रेजी भाषा पढ़ाने के लिए आतुर हो रही है। इसके पीछे विदेशी मीडिया का ही षडयंत्र नहीं बल्कि संपन्न वर्ग का सभ्य समाज भी इधर विशेष उन्मुख है। हालांकि हमारे देश में संतो, घुमक्कड़ों, सिनेमा जगत और इंटरनेट ने हिन्दी के प्रचार-प्रसार और

समृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है फिर भी आवश्यकता है इस बात की कि जितना ही हम प्रशासनिक और वैयक्तिक संगठनों के माध्यम से विदेशों में हो रहे हिन्दी पाठकों से जुड़ेंगे उतना ही उसके पाटकों में वृद्धि होगी, क्योंकि विदेशी जनमानस में हिन्दी की लोकप्रियता के लिए योजनाबद्ध तरीके से कार्य करना होगा इस संबंध में मेरे निम्न सुझाव हैं-

1. देशी प्रांतीय भाषाओं से हिन्दी मंचों को जोड़ते हुए उनके सहयोग लेना अपेक्षित होगा।
2. देशी या विदेशी भाषाओं के प्रति आदर का भाव रखते हुए अन्य देशों में हिन्दी पाठ्यक्रमों को मंचों और नेट के माध्यम से जनसामान्य तक पहुंचानी होगी।
3. प्रशासनिक स्तर अन्य देशों के हिन्दी पाठकों, शोधार्थियों और लेखकों को आर्थिक सहायता प्रदान करते हुए सम्मानित भी करना होगा।
4. सरकारी आयोजनों की और औपचारिकताओं को समाप्त करते हुए सच्चे लेखकों का आदान प्रदान करना होगा। चाहे गोष्ठियों द्वारा हो या सम्मेलनों द्वारा।
5. भारतीय सरकारी तंत्र अंग्रेजी के प्रति अत्याधिक निष्ठावान है उसे अपनी हिन्दी भाषा के प्रति जागरूक होना जरूरी होगा।
6. अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी की संस्थाएं भी खोली जानी चाहिए जो देश विदेश में भाषा के प्रचार-प्रसार और उसकी योजनाओं को दिशा दे सकें और वार्षिक समीक्षा भी करें।
7. केंद्रीय एवं प्रांतीय सरकारों को ईमानदारी से अपनी हिन्दी के प्रति निष्ठा रखते हुए उसकी समृद्धि एवं प्रचार को ध्यान में रखते हुए संस्थागत योजनाएं लागू करनी होगी।
8. सभी प्रांतों की शिक्षा-संस्थाओं को अपनी प्रांतीय भाषाओं के साथ हिन्दी राजभाषा के लिए अनिवार्य रूप से पाठ्यक्रम तैयार करना होगा।
9. विद्यार्थियों तथा लेखकों को पढ़ाने एवं प्रकाशनार्थ वित्तीय सहायता देनी होगी जो अत्यंत संक्षिप्त है।

आशा है कि इस तरह से हमारे देश के भीतर और बाहर हिन्दी भाषा की अपनी अहम पहचान बन सकती है इसे हमारा भविष्य निर्धारित करेगा।

राष्ट्रभाषा हिन्दी के अनन्य समर्थक

डॉ. वेदप्रकाश पाण्डेय*

स्वतंत्रा-प्राप्ति के पश्चात् सम्प्रभुता सम्पन्न भारत के संविधान-निर्माण के अनुक्रम में राष्ट्र की अपनी भाषा पर विचार करते हुए संविधान-निर्माता मनीषियों ने देवनागरी लिपि में हिन्दी को 14 सितम्बर 1949 को संविधान की धारा 343-ए के अन्तर्गत देश की राजभाषा और अंग्रेजी को अगले 15 वर्षों के लिए सम्पर्क-भाषा के रूप में स्वीकृत/घोषित किया। इस सम्बन्ध में व्यवस्था दी गयी कि आगामी पन्द्रह वर्षों में हिन्दी अपने को इतना समर्थ बना लेगी कि वह देश के (पठन-पाठन, ज्ञान-विज्ञान, शोध, न्याय, चिकित्सा, राजकाज और सम्पर्क) प्रत्येक क्षेत्र में व्यवहृत हो सकेगी। तब हिन्दी को इस योग्य नहीं समझा गया था कि वह राष्ट्र का उत्तरदायित्त्व, भाषा के धरातल पर, वहन कर सकेगी। उस वक्त राष्ट्र-भाषा के प्रश्न पर असहमति के निम्न कारण बताए गये थे- देश का बहुभाषा भाषी स्वरूप, उत्तर-दक्षिण का भाव, दक्षिण के राज्यों का विरोध, नेहरू जी का अंग्रेजी-प्रेम, अधिकारियों की साजिश, गाँधी जी का प्रभावहीन हो जाना और हिन्दी की सामर्थ्य पर संदेह।

दुर्भाग्य से सरकारी सहयोग, रुचि और जोश में कमी, हिन्दी विद्वानों में मतभेद, दृढ़ इच्छाशक्ति की कमी और राष्ट्रीय गर्व तथा शर्म के एहसास के अभाव के कारण आगे के वर्षों में हिन्दी अपेक्षित मुकाम पर नहीं पहुँच सकी। सन् 1963 में संविधान में संशोधन किया गया और व्यवस्था दी गयी कि कुछ काम सिर्फ अँग्रेजी में, कुछ सिर्फ हिन्दी में और कुछ दोनों भाषाओं में होंगे। सन् 1967 में एक और संशोधन हुआ। इस संशोधन की सबसे बड़ी त्रासदी/विडम्बना थी सरकार का यह मानना कि जब तक देश के सभी राज्य सहमत नहीं होंगे तब तक हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा नहीं दिया जायेगा। अंग्रेजी सम्पर्क की भाषा बनी रहेगी। किसी भी देश की लोकतांत्रिक प्रणाली में बहुमत के आधार पर सारे कार्य होते हैं, यहाँ सर्वानुमति की बात का औचित्य समझ से परे है।

हिन्दी-भक्त महापुरुषों ने राष्ट्रभाषा-राजभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार, समृद्धि और प्रतिष्ठा के लिए बहुस्तरीय प्रयत्न शुरू किए। ये प्रत्यत्न संस्थागत और व्यक्तिगत दोनों प्रकार के थे। संस्थागत प्रयत्न के अन्तर्गत अनेक संस्थाओं, समितियों का गठन हुआ। कुछ पीठें खुलीं। कुछ परिषदें बनीं।

*पूर्व प्राचार्य, किसान पी.जी. कालेज, सेवरही, कुशीनगर

देशव्यापी इन संस्थाओं के सामूहिक प्रयास से बहुस्तरीय कार्य प्रारम्भ हुए। बहुत दूर तक सफलता भी मिली। यहाँ हमें इन संस्थाओं के अवदान के विषय में विस्तार से कुछ नहीं कहना है।

हिन्दी की प्रतिष्ठा के लिए व्यक्तिगत प्रयत्न के अन्तर्गत जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के राष्ट्रीय विचार धारा से ओतप्रोत कुछ स्वाभिमानी और सुयोग्य लोग खड़े हुए। ये अपने संकल्प के प्रति इतने प्रतिबद्ध थे कि जरूरत पड़ने पर इन्होंने सड़क पर उतरने से भी परहेज नहीं किया। हिन्दी के प्रति इनके समर्पण और संघर्ष की गाथा अपूर्व है। मैं यहाँ ऐसे ही कुछ हिन्दी-सेवियों, समर्थकों की संघर्ष-गाथा का उल्लेख करने का विनम्र प्रयास करूँगा। हिन्दी-वीरों की संघर्ष-गाथा के उल्लेख के पूर्व संक्षेप में हम कुछ ऐसे मनीषियों की चर्चा करेंगे जिन्होंने शान्त भाव से अपनी मनीषा, अध्यवसाय और उद्यम से हिन्दी की प्रतिष्ठा और समृद्धि में अद्‌भुत योगदान किया है।

हिन्दी के प्रबल पक्षधार, समर्पित, संघर्षशील और प्रतिबद्ध व्यक्तियों की हमें तीन श्रेणियाँ दिखाई देती हैं। पहली श्रेणी में आते हैं साहित्यकार, वैज्ञानिक, वैयाकरण, भाषा-वैज्ञानिक, पत्रकार, अनुवादक, कोशकार, अनुसंधाता, इतिहासकार, अध्यापक और न्यायाधीश। इस श्रेणी के लोगों ने बिना किसी शोर के अपने-अपने क्षेत्र में शान्त-स्थिर चित्त से अहर्निश जुटकर इतना और ऐसा कार्य किया जिससे हिन्दी के विरोधियों के बहुत सारे प्रश्न और सन्देह स्वतः समाप्त हो गये।

ऐसे कुछ शिक्षक हुए जिन्होंने विज्ञान के विषयों का बड़ी कुशलता के साथ उच्च कक्षाओं में अध्यापन किया और यह सिद्ध कर दिया कि विज्ञान की पढ़ाई हिन्दी-माध्यम से संभव है। ऐसे आचार्यो में कुछ नाम आदर से लेने योग्य हैं- प्रो. देवेन्द्र शर्मा (भौतिकी), प्रो. वीरबल साहनी (वनस्पति शास्त्र), प्रो. (स्वामी) सत्य प्रकाश (रसायन शास्त्र) और डॉ. गोरखप्रसाद (गणित)।

इसी तरह न्याय/विधि के क्षेत्र में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के स्वनामधन्य न्यायमूर्ति प्रेमशंकर गुप्त, न्यायमूर्ति बी.एल. यादव, न्यायमूर्ति गौरीशंकर त्रिपाठी, न्यायमूर्ति के.डी. शाही, न्यायमूर्ति कलीमुल्लाह का नाम, हिन्दी में निर्णय देने के कारण, आदर के साथ स्मरण करने योग्य है। ये वे लोग हैं जिन्होंने पहले वकील के रूप में और बाद में न्यायाधीश के रूप में हिन्दी में कार्य करके न केवल राष्ट्रभाषा के प्रति अपनी निष्ठा का परिचय दिया है प्रत्युत् भावी पीढ़ी और अपने समकालीनों के समक्ष मिसालें पेश की हैं।

हिन्दी-समर्थकों की दूसरी श्रेणी में दिखाई देते हैं वे महापुरुष जो थे तो सक्रिय राजनीति में किन्तु हिन्दी उनकी अस्मिता से जुड़ी हुई थी। वे शुरू से ही हिन्दी की शक्ति से परिचित थे और इसे स्वतंत्रता-संग्राम की भाषा के रूप में स्वीकार कर चुके थे। उन्होंने इसकी व्याप्ति, सरलता, लोकप्रियता, सामर्थ्य और संख्याबल का आकलन करके इसे राष्ट्रीय एकता के लिए जरूरी भाषा के रूप में अंगीकार कर लिया था। इनमें सबसे बड़ा नाम है गुजराती भाषी राष्ट्रपिता महात्मा

गांधी का। तमिल भाषी राजाजी राजगोपालाचार्य और बांग्लाभाषी नेताजी सुभाषचन्द्र बोस का। इस कड़ी में काका साहब कालेलकर (मराठी), कन्हैया लाल माणिक लाल मुंशी (गुजराती), पं. मदन मोहन मालवीय, गोविन्दबल्लभ पन्त, पुरुषोत्तम दास टण्डन, सेठ गोविन्ददास, सम्पूर्णानन्द, कमलापति त्रिपाठी, भागवत झा आजाद, आचार्य नरेन्द्रदेव, डॉ. राम मनोहर लोहिया, वासुदेव सिंह, डॉ. शंकर दयाल सिंह, चन्द्र शेखर, लक्ष्मीमल्ल सिंहवी, अटलबिहारी बाजेपयी (हिन्दी) और नरेन्द्र मोदी (गुजराती) का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है।

उपर्युक्त महानुभावों में महात्मा गांधी, काका कालेलकर, पुरुषोत्तमदास टण्डन, सेठ गोविन्ददास और डॉ. लोहिया का कार्य विशिष्ट एवं उल्लेखनीय है। इनके अवदान की चर्चा आगे हम विस्तार से करेंगे।

तीसरी श्रेणी उन गैर राजनीतिक व्यक्तियों की है जिनका सम्बन्ध जिन्दगी के अन्यान्य क्षेत्रों से है और जिन्होंने हिन्दी की अस्मिता तथा प्रतिष्ठा के लिए कठिनाइयाँ सही हैं, सड़क से संसद तक संघर्ष किया है और लम्बे समय से चली आ रही गुलाम मानसिकता को तोड़कर एक नयी इबारत लिखी है। ऐसे महत्त्वपूर्ण लोगों में पं. श्रीनारायण चतुर्वेदी, डॉ. श्याम रुद्र पाठक, डॉ. वेदप्रताप वैदिक, मुकेश जैन, मुनीश्वर दत्त, चन्द्र शेखर उपाध्याय, भानु प्रताप सिंह और डॉ. अमरनाथ शर्मा प्रमुख हैं।

1. महात्मा गांधी: 2 अक्टूबर 1869 को राजकोट, गुजरात में जन्मे मोहनदास करमचन्द गांधी अपने कृतित्व से महात्मा और राष्ट्रपिता बने। विराट व्यक्तित्व के धनी और अपने समय के सबसे प्रतिष्ठित राजनेता होने के साथ ही उनका हिन्दी-प्रेम भी जगत विख्यात है। भाषा की समस्या पर वे बड़े स्पष्ट थे। हिन्दी की शक्ति से वह शुरू में ही परिचित हो गये थे। सन् 1918 में वे हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति बने। उन्होंने दक्षिण में हिन्दी के प्रचार की योजना बनायी। 1918 में ही उन्होंने अपने पुत्र देवदास गांधी को दक्षिण भारत में हिन्दी-प्रचारार्थ भेजा। गांधीजी के प्रयास से 1827 ई. में 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा' का गठन हुआ। गांधी जी ने हमेशा स्वदेशाभिमान, स्वभाषा और स्वदेशी पर जोर दिया। उनका उद्घोष था ''स्वदेशाभिमान को स्थिर रखने के लिए हमें हिन्दी सीखना आवश्यक है'' अपने दक्षिण अफ्रीका-प्रवास काल में ही वे हिन्दी को देश की भावी राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार कर चुके थे। इसीलिए 1909 ई. में ही 'हिन्द-स्वराज' में उन्होंने लिखा था - ''हर एक पढ़े-लिखे हिन्दुस्तानी को अपनी भाषा का, हिन्दू को संस्कृत का, मुसलमान को अरबी का, पारसी को पर्शियन का, और सबको हिन्दी का ज्ञान होना चाहिए।'' अपनी आत्मकथा में भी उन्होंने अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है- ''मैं यह मानता हूँ कि भारतवर्ष के उच्च शिक्षणक्रम में मातृभाषा के उपरान्त राष्ट्रभाषा हिन्दी के लिए भी स्थान होना चाहिए।''

गांधी जी अहिन्दी भाषी थे। उन्होंने न केवल स्वयं हिन्दी सीखी प्रत्युत् बहुतों को हिन्दी सीखने के लिए प्रेरित किया। हिन्दी में पत्र -व्यवहार करने के साथ-साथ, उन्होंने राष्ट्रीय महत्त्व के

अनेक मुद्दों पर अपने विचार हिन्दी में व्यक्त किए। सार्वजनिक सभाओं और काँग्रेस के अधिवेशनों में वे हिन्दी को महत्त्व देते थे। हिन्दी को देशव्यापी भाषा बनाने का महत्त्वपूर्ण कार्य गांधी जी द्वारा हुआ। उनके माध्यम से ही हिन्दी शुद्धसाहित्य के दायरे से निकलकर राजनीतिक मंच तक पहुँची। वे हिन्दी के ऐसे प्रबल समर्थक थे जिन्होंने 'यंग इण्डिया' में लिखा है- ''अगर मेरे हाथों में तानाशाही सत्ता हो तो मैं आज से ही हमारे लड़के और लड़कियों की विदेशी माध्यम से शिक्षा बन्द कर दूँ और सारे शिक्षकों और प्रोफेसरों से यह माध्यम तुरन्त बदलवा दूँ या उन्हें बरखास्त कर दूँ। मैं पाठ्य पुस्तकों की तैयारी का इन्तजार नहीं करूँगा। वे तो माध्यम के परिवर्तन के पीछे-पीछे चली आयेंगी।'' गांधी जी और गांधी-युग के विचारों-प्रयासों से हिन्दी-भाषा एवं साहित्य को जो ताकत और प्रश्रय प्राप्त हुआ, हिन्दी के इतिहास में वह सर्वथा अपूर्व है।

2. काका साहब कालेलकर: 1 दिसम्बर 1885 को महाराष्ट्र के सतारा में जन्मे मराठी भाषी काका साहब कालेलकर देश के उन नेताओं में थे जिन्होंने राष्ट्रभाषा के प्रचार-प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। वे राष्ट्रभाषा-प्रचार को एक राष्ट्रीय कार्यक्रम मानते थे। उन्होंने स्वयं हिन्दी सीखी और कई वर्ष तक हिन्दी का प्रचार किया। दक्षिण भारत तथा गुजरात में उन्होंने राष्ट्रभाषा प्रचार कार्य में विशेष रुचि ली। गांधी जी का स्नेह-भाजन होने के नाते राष्ट्रभाषा प्रचार-समिति की स्थापना के बाद उन्हें गुजरात में हिन्दी-प्रचार का दायित्त्व सौंपा गया। फलतः उन्होंने गुजराती सीखी और हिन्दी-प्रचार का कार्य कुशलतापूर्वक किया। गुजरात में हिन्दी-प्रचार की सफलता और अपने गुजराती भाषा के अध्ययन और ज्ञान के आधार पर वे 'साहित्य अकादमी' के गुजराती भाषा के प्रतिनिधि बने।

काका साहब उच्च कोटि के विद्वान, विचारक एवं साहित्यकार थे। राष्ट्रभाषा के प्रचार-कार्य के साथ-साथ उन्होंने पर्याप्त लेखन भी किया। एक लेखक के रूप में भी उन्होंने हिन्दी-साहित्य की श्री-वृद्धि की।

3. पुरुषोत्तम दास टण्डन: टण्डन जी (11 अगस्त 1882-1 जुलाई 1962 ई.) का जन्म प्रयाग में हुआ था। 'अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन' की स्थापना, जिसके वे स्वयं सूत्रधार एवं संस्थापकों में से एक थे, के बाद महामना मालवीय जी की सदिच्छा से उन्होंने सम्मेलन का सारा कार्य बड़ी खूबी से निभाया। असाधारण रूप से सफल वकील एवं काँग्रेस के प्रथम पंक्ति का नेता होने के बावजूद उन्होंने अपना मूल्यवान समय हिन्दी के प्रचार-प्रसार और उसकी प्रतिष्ठा हेतु अर्पित किया।

लाला लाजपत राय द्वारा संस्थापित 'लोक सेवा मण्डल' का सदस्य होने के नाते उनका कार्य-क्षेत्र लाहौर (तब का पंजाब) तक फैल गया। इसलिए पंजाब के हिन्दी-आन्दोलन को बड़ा सम्बल मिला। राजनीतिक कार्यों के साथ उन्होंने पंजाब के लाहौर, अमृतसर, जालंधर और अबोहर

जैसे हिन्दी के केन्द्रों से जुड़कर अनेक संस्थाओं द्वारा संचालित शिक्षण संस्थाओं में हिन्दी के लिए जगह बनाई।

सन् 1930 ई. में टण्डन जी ने हिन्दी-सेवा सम्मेलन के तत्त्वावधान में 'हिन्दी विद्यापीठ' की स्थापना की। हिन्दी के शिक्षण और प्रचार में विद्यापीठ का योगदान सर्वविदित है।

टण्डन जी का वैचारिक धरातल बड़ा ऊँचा, नैतिक और दृढ़ था। अपनी मान्यता के विपरीत पड़ने पर वे किसी से भी असहमत हो सकते थे। वे हिन्दी और उसकी लिपि के रूप में देवनागरी के कट्टर पक्षधार थे। महात्मा गांधी जैसे व्यक्ति के 'हिन्दुस्तानी' का विरोध उन्होंने खुलकर किया था। इस मतभेद के चलते गांधी जी ने 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' से त्यागपत्र दे दिया था। भाषा और लिपि के सम्बन्ध में उनका विचार इतना स्पष्ट एवं संगत था कि 1949 ई. में देश की संविधान परिषद् ने भी देवनागरी लिपि में हिन्दी को ही मान्यता प्रदान की। हिन्दी के प्रति उनके अनन्य प्रेम, समर्पण और सेवा के लिए उन्हें 1961 ई. में 'भारत रत्न' की उपाधि से विभूषित किया गया।

4. डॉ. सेठ गोविन्ददासः सेठ जी (1896-1926 ई.) का जन्म मध्य प्रदेश के जबलपुर शहर के एक अत्यन्त सम्पन्न, धार्मिक एवं सुसंकृत परिवार में हुआ था। वे हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी के अच्छे ज्ञाता थे। गांधी जी से प्रभावित होकर स्वाधीनता आन्दोलन में भाग लेने के कारण 1930 ई. में जेल-यात्रा की। यह उनकी पहली जेल-यात्रा थी। पारिवारिक एवं सार्वजनिक जीवन जीते हुए उन्होंने विपुल मात्रा में सृजन भी किया। वे जबलपुर से अनेक बार सांसद निर्वाचित हुए।

हिन्दी के प्रबल समर्थक एवं पक्षधार थे। हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के निमित्त सदैव संघर्षशील एवं प्रयासरत रहे। संसद द्वारा हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा दिलाने में उनकी भूमिका अविस्मरणीय है। हिन्दी के प्रति उनके प्रेम का ही परिणाम था कि वे एक सांसद के रूप में काँग्रेस की नीति से हटकर कार्य करते रहे।

5. पं. गोविन्दबल्लभ पन्तः पन्त जी (10 सितम्बर 1887-7 मार्च 1961 ई.) का जन्म अल्मोड़ा जिले में हुआ था। पन्त जी उच्च शिक्षा सम्पन्न वकील और राजनेता थे। वे उत्तर प्रदेश विधान-परिषद के सदस्य, प्रान्तीय काँग्रेस कमेटी के अध्यक्ष, उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री और केन्द्र में गृहमंत्री रहे।

हिन्दी के गढ़ उत्तर प्रदेश के वे पहले मुख्यमंत्री बने। मुख्यमंत्री के रूप में प्रदेश के प्रशासनिक कार्यों में हिन्दी को समुचित स्थान दिलाने में पन्त जी का योगदान अपूर्व है। सन् 1938-39 में ही उन्होंने 'पारिभाषिक शब्दकोष' निर्माण का कार्य आरम्भ करा दिया था। उनके नाते शासन के अनेक विभागों एवं जिलास्तरीय प्रशासनिक कार्यों में भी आंशिक अथवा पूर्ण रूप से अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी का उपयोग होने लगा था। राजकीय स्तर पर उन्होंने पारिभाषिक एवं

प्रामाणिक आधारभूत ग्रन्थों के हिन्दी-रूपान्तर का काम करवाया। देवनागरी-लिपि में सुधार हेतु भी उन्होंने कदम उठाए।

केन्द्रीय गृहमंत्री के रूप में उन्होंने राष्ट्रपति महोदय से भाषा-आयोग का गठन करवाया। सरकारी कर्मचारियों को हिन्दी-शिक्षण की सुविधा प्रदान की। इसके लिए उन्होंने अहिन्दी भाषी समस्त केन्द्रीय कर्मचारियों के लिए हिन्दी-कक्षाएँ चलवाईं। उनके सत्प्रयास से हजारों व्यक्तियों ने हिन्दी सीखी। विभिन्न हिन्दी विद्यापीठों, संस्थाओं, नौकरियों में भर्ती के लिए स्वीकृति मिली। भाषा-आयोग के प्रतिवेदन पर संसद में एक वाद-विवाद में हिन्दी के पक्ष में उनका भावोद्‌गार चिर स्मरणीय है। सत्तारूढ़ दल के सदस्य के रूप में उनका हिन्दी का प्रत्यक्ष समर्थन और विपरीत परिस्थितियों में अनेक बार हिन्दी की रक्षा का उनका कार्य सदैव प्रशंसनीय रहेगा। राष्ट्रभाषा के प्रबल पक्षधर, समर्थक और रक्षक के रूप में हिन्दी-जगत उन्हें सर्वदा याद रखेगा।

6. डॉ. राम मनोहर लोहिया: लोहिया जी (23 मार्च 1910-12 अक्टूबर 1967) का जन्म उत्तर प्रदेश के फैजाबाद जनपद में हुआ था। वे एक उच्च शिक्षा सम्पन्न, प्रखर, प्रबुद्ध एवं विलक्षण प्रतिभा के समाजवादी चिन्तक-विचारक नेता थे। वे हमारे देश के महान नेताओं की परम्परा की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी थे। सड़क से संसद तक उनकी मौजूदगी का अपना एक निराला अन्दाज था। जहाँ तक हिन्दी-भाषा के राष्ट्रभाषा के रूप में प्रयोग का प्रश्न है, वहाँ उनके विचार बिल्कुल स्पष्ट और राष्ट्रीय भावना तथा गरिमा मे ओतप्रोत हैं। उनका दृढ़मत था कि अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी का प्रयोग आजादी के तत्काल बाद से होना चाहिए था। उन्होंने अंग्रेजी को कभी विश्वभाषा नहीं माना। वे कहते भी थे कि कोई भाषा विश्वभाषा नहीं हो सकती।

लोहिया जी का ज्ञान और अनुभव विशद था। उनमें दूरदर्शिता की अद्‌भुत शक्ति थी। वे समग्र भारतीय भाषाओं के विकास के पक्षधार थे। उनका मानना था कि सभी को आरम्भिक शिक्षा उसकी मातृभाषा में और उच्च शिक्षा हिन्दी में दी जानी चाहिए। वे इस बात के प्रबल समर्थक थे कि प्रान्त के सारे कार्य उसकी अपनी भाषा में और केन्द्र का कार्य राष्ट्रभाषा में होना चाहिए।

टर्की के महान शासक और प्रगतिशील विचारों के युवा तुर्क कमालपशा की तरह लोहिया जी का मत था कि तात्कालिक प्रभाव से अंग्रेजी को मुल्क से विदा करके उसकी जगह हिन्दी को प्रतिष्ठित कर देना चाहिए था। वे बराबर कहा करते थे कि जर्मनी, रूस, चीन, जापान आदि देशों ने अपनी भाषा में उल्लेखनीय तरक्की की है और हम अंग्रेजी के अन्यथा मोह में पड़कर अपनी भाषा का अनादर करते जा रहे हैं।

भाषा के प्रश्न पर उनके दो उदाहरण भुलाए नहीं भूलते। वे कहते थे कि तैरना सीखकर कोई पानी में नहीं उतरता। तैरना सीखने के लिए पानी में उतरना पड़ता है। वे यह भी कहते थे कि सही

न्याय, चिकित्सा, चिन्तन और युद्ध अंग्रेजी के बल पर नहीं होते। यह मनुष्य की निजी मौलिकता, नैतिकता, कल्पनाशक्ति और साहसिकता से हुआ करते हैं। उनकी ही प्रेरणा से 1966-67 में 'अंग्रेजी हटाओ' आन्दोलन चला था जिसमें सम्पूर्ण उत्तरी भारत के युवकों ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया था। लोहिया जी मातृभाषा-राष्ट्रभाषा के अनन्य प्रेमी, समर्थक, सहायक और पक्षधर थे।

अब हम चर्चा करेंगे उन महानुभावों की जिन्होंने हिन्दी के लिए कठिन संघर्ष किया, वर्षों तक मानसिक यंत्रणा झेली, विभागीय उपेक्षा के शिकार हुए, प्रतिवेदन दिया, बहस की, सड़क पर नारे लगाये, धरना दिया, प्रदर्शन किया, अनशन पर बैठे और जिनके लिए कभी भारत की संसद को, कभी राष्ट्रपति महोदय को तथा कभी प्रधानमंत्री को हस्तक्षेप करना पड़ा। कुछ ऐसे ही हिन्दी-वीरों का जिक्र हम यहाँ सम्मान के साथ कर रहे हैं।

6. पं. श्री नारायण चतुर्वेदी: चतुर्वेदी जी (28 दिसम्बर 1893-18 अगस्त 1990) का जन्म उत्तर प्रदेश के इटावा में हुआ था। वे अंग्रेजी हुकूमत में जिला विद्यालय निरीक्षक बने लगातार तरक्की करते हुए संयुक्त प्रान्त (अवध-आगरा) के शिक्षा-निदेशक बने। वे एक विद्वान, स्वाभिमानी और देशभक्त पिता के पुत्र थे। इंग्लैण्ड में शिक्षा प्राप्त करने के बावजूद उन पर अंग्रेजियत हावी नहीं हो पायी। भारतीय ऋषि-परम्परा का जीवन जीते हुए उन्होंने हिन्दी-भाषा के लिए आजीवन संघर्ष किया। 'सरस्वती' जैसी पत्रिका के सम्पादन, लेखन, साहित्यकारों के संरक्षण-प्रोत्साहन, शासन की हिन्दी-विरोधी नीतियों के विरोध के जरिए हिन्दी को सबल समृद्ध बनाने का उपक्रम करते रहे। चतुर्वेदी जी युवा पीढ़ी को हिन्दी के प्रति सदा उन्मुख-सक्रिय करते रहे।

जीवन के अन्तिम पड़ाव पर पहुँचकर चर्तुवेदी जी ने उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री मुलायम सिंह यादव द्वारा उर्दू को प्रदेश की दूसरी राजभाषा बनाने की घोषणा का गम्भीर विरोध किया। मुख्यमंत्री के इस निर्णय की प्रतिक्रिया में उन्होंने उस वर्ष का हिन्दी संस्थान द्वारा घोषित प्रदेश का सर्वोच्च साहित्यिक सम्मान 'भारत-भारती' लेने से इन्कार कर दिया। उनके इस ऐतिहासिक निर्णय/कदम की फलश्रुति यह हुई कि हिन्दी के प्रबल झंडावरदार माननीय अटल विहारी बाजपेयी ने उन्हें शासन द्वारा घोषित एक लाख रूपये वाली 'भारत-भारती' की जगह 1,11,111 रु. का 'जनता भारत-भारती' पुरस्कार देने की घोषणा कर दी। अटल जी द्वारा घोषित जनता द्वारा जुटाई गयी उक्त पुरम्कार-राशि लखनऊ के 'सहकारिता-भवन' में 31 जनवरी 1990 को आयोजित भव्य समारोह में अटल जी के हाथों प्रदान की गयी। चतुर्वेदी जी की अस्वस्थता के कारण सम्मान-पत्र और पुरस्कार-राशि उनके पुत्र डॉ. शैलनाथ चतुर्वेदी ने ग्रहण किया। चतुर्वेदी जी की अनन्य हिन्दी-निष्ठा रूपी पुस्तक का अन्तिम स्वर्णिम पृष्ठ उस दिन लिखा गया जब वह लगभग सत्तानबे वर्ष की आयु में उत्तर प्रदेश शासन के तुगलकी फरमान के विरोध में सड़क पर उतरे आन्दोलनकारियों का नेतृत्व करने चल पड़े थे और मार्ग में उन्हें पक्षाघात का जोरदार दौरा पड़ा था। लम्बी रुग्णावस्था

के पश्चात् वही उनकी मृत्यु का कारण बना।

निश्चित ही वे हिन्दी के भीष्म पितामह थे जो गम्भीर अस्वस्थता में भी हिन्दी का हित-चिन्तन करते थे।

7. न्यायमूर्ति प्रेमशंकर गुप्त: गुप्त जी का जन्म 15 जुलाई 1930 को इटावा में हुआ था। उनकी आरम्भिक शिक्षा हिन्दी-माध्यम से इटावा में हुई थी। इण्टर की प्रयाग के एक कालेज से तथा आगे की इलाहाबाद विश्वविद्यालय से अंग्रेजी माध्यम से हुई थी। हिन्दी के प्रति उनका झुकाव बचपन से था। उनका आरम्भिक परिवेश ही हिन्दीमय था। गुप्त जी पर भैयासाहब पं. श्री नारायण चतुर्वेदी का प्रभाव भी था। इटावा के अधीनस्थ न्यायालय की अपनी बीस वर्ष की वकालत में उन्होंने हिन्दी में कार्य करना शुरू कर दिया था। सन् 1971 में उनकी नियुक्ति उपशासकीय अधिवक्ता के रूप में इलाहाबाद उच्च न्यायालय में हो गयी। 1973 में वे शासकीय अधिवक्ता के पद पर प्रोन्नत हो गये। अब उन्होंने अंग्रेजी के साथ हिन्दी में भी कार्य करना शुरू कर दिया था। उच्च न्यायालय में हत्या के एक गम्भीर मामले में उन्होंने खण्डपीठ के समक्ष सम्पूर्ण बहस सरल-सुबोध हिन्दी में कुशलतापूर्वक करके पीठ की मुक्त प्रशंसा प्राप्त की।

सन् 1977 में वे उच्च न्यायालय में जज नियुक्त हुए। हिन्दी में कार्य करने और निर्णय देने की प्रेरणा उन्हें न्यायमूर्ति कुँवर बहादुर अस्थाना से मिली। न्यायमूर्ति अस्थाना ने (14 सितम्बर 1973) को मीसा से सम्बन्धित एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मुकदमे में हिन्दी में निर्णय दिया था। इस निर्णय ने उन्हें प्रेरणा के साथ ताकत भी दी। गुप्तजी जब एकल पीठ में होते तो सारी कार्यवाही हिन्दी में करते और पीठ के समक्ष समागत वकीलों को हिन्दी मे कार्य करने की प्रेरणा भी देते। जब उन्हें खण्ड पीठ में कार्य करना पड़ता तो वे भी दूसरे न्यायमूर्तियों की भाँति अंग्रेजी में ही कार्यवाही करते किन्तु धीरे-धीरे उन्होंने खण्डपीठ में होकर भी अपना निर्णय हिन्दी में देना शुरू कर दिया। 25 नवम्बर 1977 को उन्होंने अपना पहला निर्णय हिन्दी में दिया। आगे चलकर उन्होंने हिन्दी को अपनी कार्य-प्रणाली का हिस्सा बना लिया। कहा जाता है कि हिन्दी में दिए गये उनके फैसलों की संख्या चार हजार के ऊपर है। यह कार्य उन्होंने अपने पन्द्रह वर्ष के सेवाकाल में किया।

उच्च न्यायालय में शासकीय अधिवक्ता तथा जज के रूप में हिन्दी में कार्य करने के प्रयास में उन्हें कई बार उपहास, विरोध और चुनौतियों का सामना करना पड़ता था। यह हिन्दी के प्रति उनकी निष्ठा ही थी कि उन्होंने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। यही कारण है कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय के इतिहास में अपने हिन्दी-प्रेम के कारण उनकी पहचान कायम हुई।

उत्तर प्रदेश सरकार ने गुप्त जी को उनकी हिन्दी-सेवा के लिए 'हिन्दी-गौरव' सम्मान से अलंकृत किया। सम्मान-स्वरूप उन्हें एक्यावन हजार रूपये मिले। न्यायमूर्ति गुप्त ने अपनी तरफ से

बीस हजार मिलाकर इकहत्तर हजार रूपये से 'हिन्दी सेवा निधि' नाम की एक संस्था बनाई। यह संस्था उनके गृह नगर इटावा में कार्य करती है। इसके तत्त्वावधान में प्रति वर्ष दो दिवसीय भव्य समारोह आयोजित होता है। इसमें हिन्दी के प्रेमियों का जमावाड़ा तो होता ही है, इटावा के साहित्यकारों को सम्मानित-पुरस्कृत भी किया जाता है। गुप्त जी के न रहने पर भी संस्था उनके मिशन को पूरा कर रही है।

उच्च न्यायालय में हिन्दी को प्रतिष्ठित करने की दिशा में स्वर्गीय प्रेमशंकर गुप्त का योगदान कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता।

अब कुछ ऐसे व्यक्तियों की चर्चा जिन्होंने हिन्दी के देश में हिन्दी की लड़ाई लड़ी और अपने लम्बे संघर्ष के बल पर इन्जीनियरिंग, चिकित्सा-विज्ञान, विधि, संघ लोक सेवा आयोग और प्रबन्धन के क्षेत्र में परीक्षा के माध्यम, शोध और पाठ्यक्रमों में हिन्दी भाषा को पहली बार वैकल्पिक माध्यम बनवाया। आज गुमनामी के अँधेरे में जी रहे हिन्दी की प्रतिष्ठा के लिए लम्बे और कठिन संघर्ष से गुजरे इन योद्धाओं का जिक्र करते हुए मुझे आनन्द एवं गर्व का अनुभव हो रहा है। अस्तु।

आगे हम क्रमवार जिक्र करेंगे मुकेश जैन, श्यामरुद्र पाठक, डॉ. मुनीश्वर गुप्त, चन्द्रशेखर उपाध्याय, भानुप्रताप सिंह, बलदेव वंशी, डॉ. वेदप्रताप वैदिक और डॉ. अमरनाथ शर्मा का जिन्होंने अपने-अपने ढंग से हिन्दी के लिए जंग लड़ी और कामयाब हुए। राष्ट्रभाषा के लिए लड़ी गई लड़ाई में दिल्ली के वोट-क्लब पर धरना, संसद के भीतर पर्चा फेंकना, बाहर प्रदर्शन, भूख-हड़ताल, जनसम्पर्क, हस्ताक्षर-अभियान, पोल खोलो जोर से बोलो, रैली और लाठीचार्ज सब हुआ। इतना ही नहीं इन हिन्दी-वीरों ने अनेक बार, परीक्षाओं में हिन्दी में उत्तर लिखने की स्वीकृति न मिलने पर, विरोध स्वरूप उत्तर-पुस्तिकाएँ जलायीं और सांसदो के ध्यानाकर्षण के लिए पर्चे लेकर संसद की गैलरी में कूदे और घायल हुए।

8. डॉ. मुकेश जैन: पहली घटना का केन्द्र बना रुड़की विश्वविद्यालय। शामली (उ.प्र.) के निवासी मुकेश जैन 1980 में वहाँ से धातुकर्म शाखा से बी.टेक. कर रहे थे। मुकेश जैन ने रुड़की आने से पहले एक अंग्रेजी-विरोधी संस्था बनाई थी। इस संस्था के माध्यम से वे अंग्रेजी के विरोध और राष्ट्रभाषा के अधिकाधिक प्रयोग हेतु कार्य किया करते थे। बी.टेक. करने के दौरान उन्होंने छात्रों के बीच एक हस्ताक्षर-अभियान चलाया और माँग की कि छात्रों को हिन्दी में उत्तर लिखने की आजादी मिले और प्रश्न अंग्रेजी के साथ-साथ हिन्दी में भी हो। लम्बे संघर्ष और अवरोधों-विरोधों के बाद उन्हें सफलता मिली। इससे उत्साहित होकर उन्होंने 1984 में बी.टेक. (चतुर्थ वर्षीय पाठ्यक्रम) हिन्दी-माध्यम से पूरा करने के पश्चात अंग्रेजी-अनिवार्यता विरोधी मंच का गठन किया। इस मंच के माध्यम से माँग की कि देश के अन्य आई.आई.टी. संस्थानों में इन्जीनियरिंग की प्रवेश-परीक्षा हिन्दी में भी हो। वर्ष 1984 में रुड़की विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित इंजीनियरिंग की

प्रवेश-परीक्षा में मुकेश जैन के आवाहन पर कुछ प्रवेशार्थियों ने उत्तर-पुस्तिकाएं हिन्दी में लिखीं। कक्ष-निरीक्षकों द्वारा रोके जाने पर अनेक छात्रों ने अपनी उत्तर-पुस्तिकाएँ जला दीं। यह घटना मीडिया में छा गयी और पी.टी.आई. जैसी प्रमुख संवाद एजेन्सी ने इसे खासा महत्त्व देकर प्रकाशित किया। अब यह मसला रुड़की से बाहर निकलकर देश की राजधानी दिल्ली तक पहुँच गया।

9. श्यामरुद्र पाठक: 24 अक्टूबर 1962 को जन्मे, बिहार के एक संस्कृत-शिक्षक के पुत्र और गाँव की साधारण पृष्ठभूमि से निकले, एक विलक्षण छात्र श्यामरुद्र पाठक 1985 में आई. आई.टी. दिल्ली के बी.टेक. अन्तिम वर्ष के छात्र थे। विश्वविद्यालय प्रशासन से उन्होंने अपनी प्रोजेक्ट रिपोर्ट हिन्दी में लिखने की अनुमति माँगी। निदेशकों ने उनकी माँग अस्वीकार कर दी। अपनी धुन के पक्के श्यामरुद्र पाठक आन्दोलित हो गये। अत्यन्त कठिन परिस्थिति में उन्होंने बी.टेक. की परीक्षा उत्तीर्ण की और असाधारण अंक प्राप्त किए। देश के सभी (पाँचों) आई.आई.टी. संस्थान भौचक रह गये जब श्यामरुद्र पाठक ने एम.टेक. पूर्व जी.ए. आई.आई.टी. (ग्रेजुएट एप्टीट्यूड इन इन्जीनियरिंग टेस्ट) की परीक्षा में देश भर में सर्वाधिक अंक प्राप्त कर सर्वोच्च स्थान हासिल किया। अखिल भारतीय स्तर की इस अत्यन्त कठिन परीक्षा में हिन्दी पृष्ठभूमि के देहाती युवक श्यामरुद्र पाठक ने 99.89 प्रतिशत अंक प्राप्त करके एक मिसाल कायम कर दी। उनकी इस उपलब्धि की चर्चा मीडिया में खूब हुई। तमाम प्रमुख हिन्दी दैनिक समाचार पत्रों एवं एक प्रमुख अंग्रेजी समाचार पत्र से सम्बद्ध पत्रकार लेखा चटर्जी ने श्यामरुद्र पाठक की संघर्ष-गाथा को प्रमुखता से प्रकाशित किया। इस प्रकार श्यामरुद्र जी का अभियान देशव्यापी स्वरूप ग्रहण कर लिया। सन् 1985 के अगस्त महीने में अपने समय के चर्चित सांसद (अब स्व.) भागवत झा आजाद ने इस मामले को संसद के पटल पर रखा। लोकसभा के तत्कालीन अध्यक्ष श्री बलराम जाखड़ ने इसका संज्ञान लिया और मामले को शिक्षामंत्री के.सी. पन्त को, तत्काल प्रभावी कदम उठाने के निर्देश के साथ, प्रेषित कर दिया। सांसद भागवत झा आजाद ने संसद को जो ज्ञापन सौंपा था उस पर 85 सांसदों के हस्ताक्षर थे। इसी तरह राज्यसभा के सदस्य कैलाशपति मिश्र ने तत्काल हस्तक्षेप की माँग करते हुए एक ज्ञापन सभापति महोदय को सौंपा जिस पर 45 सांसदों के हस्ताक्षर थे। इस बीच श्यामरुद्र पाठक लगातार पदयात्रा करके जनजागरण और जन-समर्थन जुटाने का कार्य करते रहे। इसी क्रम में वे दिल्ली स्थित 'शास्त्री भवन' के बाहर धरना देने लगे। इसका इतना व्यापक प्रभाव पड़ा कि तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री नरसिंम्हा राव उनसे मिलने आए। अनेक बड़े नेताओं ने भी मुलाकात की। इस लड़ाई के फलस्वरूप केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय की पहल पर एक उच्च स्तरीय समिति गठित हुई जिसने श्यामरुद्र पाठक द्वारा हिन्दी भाषा में प्रस्तुत प्रोजेक्ट रिपोर्ट को स्वीकार करने की अनुशंसा की। राष्ट्रभाषा के प्रति श्यामरुद्र पाठक की अनन्य निष्ठा की यह बड़ी जीत थी।

10. डॉ. मुनीश्वर गुप्त: फिरोजाबाद निवासी एक प्रतिष्ठित एवं सम्पन्न डाक्टर के पुत्र

मुनीश्वर गुप्त ने हिन्दी-माध्यम से एम.डी. करने का संकल्प लिया। उन्होंने जब इस बात की घोषणा की तब चारों ओर से विरोध आरम्भ हो गया। मुनीश्वर अपनी जिद पर अड़े रहे। बड़ी मुश्किलें पेश आयीं। अन्ततः 1987 में डॉ. मुनीश्वर गुप्त को राष्ट्रभाषा हिन्दी में एम.डी. की उपाधि प्राप्त हो गयी। गुप्त जी को यह उपाधि आगरा विश्वविद्यालय के सरोजिनी नायडू मेडिकल कालेज से मिली थी। हिन्दी माध्यम से प्राप्त चिकित्सा की दुनिया की यह प्रथम उपाधि बनी। डॉ. मुनीश्वर गुप्त के संघर्ष के परिणामस्वरूप चिकित्सा के क्षेत्र में भी हिन्दी भाषा का झण्डा गड़ गया।

11. चन्द्रशेखर उपाध्यायः रुड़की से शुरू होकर दिल्ली होते हुए हिन्दी की जो संघर्ष-यात्रा आगरा पहुँची थी उसने अब और विस्तृत रूप ले लिया। आगरा के ही एक दूसरे छात्र चन्द्रशेखर उपाध्याय ने एल.एल.एम. की परीक्षा हिन्दी-माध्यम से कराने की माँग कर दी। उस वक्त तक एल.एल.एम. की परीक्षा अंग्रेजी में ही होती थी। कुलपति ने उपाध्याय की माँग अस्वीकार कर दी। चन्द्रशेखर ने लड़ाई शुरू कर दी। 23 मार्च 1990 को उन्होंने आगरा विश्वविद्यालय के प्रांगण में भूख हड़ताल शुरू की। विश्वविद्यालय-प्रशासन ने तीन दिनों तक कोई सुधि नहीं ली। सहानुभूति की जगह हठधर्मिता का परिचय देते हुए तीसरे दिन आधी रात को सोते समय चन्द्रशेखर उपाध्याय को उठा लिया और उनका तम्बू उखाड़ दिया। इस घटना से छात्र उग्र हो उठे और उन्होंने शिक्षण-संस्थाओं को बन्द करा दिया। चन्द्रशेखर की अपील पर आगरा में अपूर्व बन्दी हुई। छात्रों और जनता का सहयोग देखकर उपाध्याय जी का उत्साह दूना हो गया। वे फिर भूख-हड़ताल पर बैठ गये। विश्वविद्यालय प्रशासन ने अपना रुख बदला। कुलपति मौके पर आए। उन्होंने चन्द्रशेखर को अपने कार्यालय में बुलाकर बात करनी चाही। चन्द्रशेखर ने अकेले में बात करने का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। छात्रों के बीच वार्ता हुई। चन्द्रशेखर अपनी बात पर अड़े रहे। परीक्षा-तिथि घोषित हो चुकी थी। कुलपति ने व्यवस्था दी कि प्रश्नपत्र सिर्फ अंग्रेजी में होंगे किन्तु परीक्षार्थी उसका उत्तर हिन्दी में भी लिख सकेंगे। चन्द्रशेखर ने इस प्रस्ताव को अमान्य करते हुए माँग की कि प्रश्नपत्र में प्रश्न अंग्रेजी और हिन्दी दोनों भाषाओं में पूछे जायँ। इस ऊहापोह में परीक्षा टल गयी। छात्रों के असंतोष और चन्द्रशेखर के जिद्दी रवैये को देखते हुए कुलपति ने विवश होकर 'बार कौंसिल आफ इण्डिया' और 'बार कौंसिल आफ उत्तर प्रदेश' से अनुमति लेकर हिन्दी में उत्तर-पुस्तिका लिखने की स्वीकृति प्रदान कर दी। परिणामस्वरूप देश के इतिहास में पहली बार एल.एल.एम. की परीक्षा हिन्दी-माध्यम से सम्पन्न हुई। चन्द्रशेखर परीक्षा में उत्तीर्ण हुए और उन्हें 54 प्रतिशत अंक मिले। वर्ष 1993 की द्वितीय वर्ष की परीक्षा में हिन्दी में उत्तर लिखने के कारण उन्हें अनुत्तीर्ण घोषित कर दिया गया। छात्र संघर्ष समिति का फिर गठन हुआ। आन्दोलन, धरना, प्रदर्शन होने लगे। मामले को गम्भीर होते देख भरतपुर (राजस्थान) की भाजपा सांसद राजकुमारी दीपा कौर ने संसद में हिन्दी के अपमान का प्रश्न उठाया। उनके इस कदम से यह प्रकरण देशव्यापी हो गया। छात्रों ने न केवल हस्ताक्षर-अभियान चलाया। वरन् मामले को अदालत में ले जाने की घोषणा भी कर दी। छात्रों की माँग का संज्ञान लेकर

राज्यपाल रोमेश भंडारी ने हस्त:क्षेप किया। फिर कुलपति मंजूर अहमद के नेतृत्व में पाँच सदस्यीय परीक्षा पुनर्मूल्यांकन समिति का गठन हुआ। चन्द्रशेखर की उत्तर पुस्तिकाओं का पुनर्मूल्यांकन हुआ। नतीजा चौंकाने वाला आया। जिन प्रश्नपत्रों में उन्हें शून्य व तीन अंक मिले थे, उनमें क्रमश: 73 व 69 अंक मिले। राष्ट्रभाषा में लिखी चन्द्रशेखर की उत्तर-पुस्तिकाएँ परीक्षकों को इतनी पसंद आयी कि उन्होंने बतौर माडल उन उत्तर-पुस्तिकाओं को सुरक्षित रखने की अनुशंसा भी की। लम्बे चले इस संघर्ष की कीमत चन्द्रशेखर ने यूँ अदा की कि जो पाठ्यक्रम वे अंग्रेजी में दो वर्ष में पूरा कर सकते थे उसे हिन्दी में पूरा करने में उनके कीमती जीवन के सात वर्ष लग गये। किन्तु इससे विधि के छात्रों को हिन्दी का विकल्प मिल गया। आज हिन्दी माध्यम से अनेक विश्वविद्यालयों के छात्र एल.एल.एम. की उपाधि प्राप्त कर रहे हैं। चन्द्रशेखर का दृढ़ संकल्प, लम्बे व कठिन संघर्ष के बाद ही सही, सफलीभूत हुआ।

12. पुष्पेन्द्र चौहान: नब्बे के दशक तक, बार कौंसिल के द्वारा लगाये गये प्रतिबन्ध के कारण, हिन्दी-माध्यम से एल.एल.बी. करने वाले विधि स्नातक दिल्ली उच्च न्यायालय में वकालत नहीं कर सकते थे। पुष्पेन्द्र चौहान ने इस प्रतिबन्ध के खिलाफ मुहिम छेड़ दी। 10 जनवरी 1991 को लोकसभा की दर्शक-दीर्घा में बैठे हुए पुष्पेन्द्र चौहान नारा लगाते हुए गैलरी में कूद पड़े। उनकी पसलियाँ टूट गयीं। गम्भीर रूप से घायल होने के बावजूद चौहान ने संघर्ष का रास्ता नहीं छोड़ा। उन्होंने चौदह वर्ष तक 'शास्त्री भवन' के बाहर धरना दिया। उनके कठिन संघर्ष और अप्रतिम त्याग के परिणाम स्वरूप बार कौंसिल ने हिन्दी-माध्यम मे उत्तीर्ण विधि-स्नातकों को भी दिल्ली उच्च न्यायालय में प्रैक्टिस करने की अनुमति प्रदान कर दी।

13. विनोद गौतम: हिन्दी के लिए संघर्ष करने वालों में एक नाम विनोद गौतम का भी है। विनोद गौतम के संघर्ष के फलस्वरूप ए.एम.आई. की प्रारम्भिक परीक्षा और पाठ्यक्रम में हिन्दी-भाषा को विकल्प चुनने की छूट मिल गयी। इतना ही नहीं हिन्दी-माध्यम को अपनाकर ए. एम.आई. करने वाले छात्रों की सुविधा के लिए उन्होंने छ: पुस्तकें लिखीं और अपने खर्च से उन्हें प्रकाशित करवाया। अंग्रेजी में उपलब्ध कई ग्रन्थों का अनुवाद किया और अपनी जेब से पैसा खर्च कर उन्हें प्रकाशित करवाया। इस कार्य में उन्हें आर्थिक रूप से बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

14. अजय मलिक: सन् 1986-1987 में दिल्ली के जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय में एम.एड्. का अध्ययन-अध्यापन अंग्रेजी और उर्दू में ही होता था। अजय मलिक नामक युवक ने माँग की कि एम.एड्. हिन्दी में भी हो। इस माँग के समर्थन में वहाँ आन्दोलन हुए। बड़ी मुश्किल से विश्वविद्यालय प्रशासन ने उनकी माँग मानी और अंग्रेजी, उर्दू के साथ हिन्दी का विकल्प भी स्वीकार हो गया।

15. भानु प्रताप सिंहः पत्रकार भानुप्रताप सिंह ने प्रबन्धन के क्षेत्र में हिन्दी के प्रवेश की लड़ाई लड़ी। हिन्दी में अपना शोध पत्र दाखिल करने के लिए उन्हें छः वर्ष तक संघर्ष करना पड़ा। अंग्रेजी परस्त लोगों ने उनकी खिल्ली उड़ाई। कहा गया कि अंग्रेजी न जानने वाले अच्छे प्रबन्धक नहीं हो सकते। भानुप्रताप सिंह ने उनके परिहास का जवाब अपने लम्बे संघर्ष से दिया और विजयी हुए। प्रबन्धन के क्षेत्र में उनका शोधपत्र, हिन्दी में लिखा गया, दुनिया का पहला शोधपत्र बना। उनके अथक संघर्ष का फल यह हुआ कि आज साधारण पृष्ठभूमि से आने वाले छात्र भी हिन्दी-माध्यम अपनाकर प्रबंधन के क्षेत्र में शिखर तक पहुँचने में कामयाब हो रहे हैं।

16. बलदेव बंशीः हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार बलदेव वंशी (1938-2017) ने हिन्दी को 'संघ लोक सेवा आयोग' (यू.पी.एस.सी.) द्वारा आयोजित परीक्षा की भाषा, अंग्रेजी के साथ वैकल्पिक भाषा, के रूप में हिन्दी के प्रयोग की माँग करते हुए दिल्ली में सैकड़ों दिनों तक धरना दिया था। इस धरने में देश के हिन्दी-भाषी प्रान्तों के अनेक प्रतिष्ठित लेखकों ने हिस्सा लेकर उनके सत्याग्रह का समर्थन किया था।

17. डॉ. वेदप्रताप वैदिकः 30 दिसम्बर 1944 को मध्य प्रदेश के इन्दौर में जन्म डॉ. वेदप्रताप वैदिक वर्तमान में हिन्दी के अनन्य भक्तों-समर्थकों में अग्रणी हैं। वे भारतवर्ष के वरिष्ठ पत्रकार, राजनीतिक विश्लेषक, कुशलवक्ता, हिन्दी एवं भारतीय भाषाओं के सुविख्यात समर्थक एवं प्रेमी हैं। वे भारतीय विदेशनीति परिषद के अध्यक्ष भी हैं। अंग्रेजी की अपेक्षा हिन्दी में बेहतर पत्रकारिता का युग आरम्भ करने वाले डॉ. वौदिक ने हिन्दी समाचार एजेन्सी भाषा के संस्थापक-सम्पादक के रूप में 'प्रेस ट्रस्ट आफ इण्डिया' में एक दशक तक कार्य किया है। वे 'नव भारत टाइम्स' के सम्पादक (विचार) भी रह चुके हैं। सम्प्रति वे भारतीय भाषा सम्मेलन के अध्यक्ष तथा 'नेटजाल डाट काम के' सम्पादकीय निदेशक हैं। डॉ. वैदिक एक विश्वयात्री, दुनिया के दर्जनों विश्वविद्यालयों के विजिटिंग प्रोफेसर, हिन्दी के एक बड़े आन्दोलनकर्त्ता, संसार के अधिकांश राष्ट्राध्यक्षों के परिचित/प्रिय/मित्र, बहुभाषाविद, विचारक, लेखक और सम्पादक हैं। उनकी विशिष्ट पहचान उनके निर्भीक व बेबाक वक्तव्यों- टिप्पणियों के कारण भी है। राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की धारा में अपने स्वतंत्र विचारों के लिए सुविख्यात डॉ. वैदिक भारतीय भाषाओं के सजग प्रहरी और प्रथम सेनानी हैं। हिन्दी के प्रति उनकी अटूट प्रतिबद्धता अन्यों के लिए प्रेरणा का आधार है। इस देश के भाषा-मनीषियों में वे एक ऐसे महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व हैं जो भाषा के सवाल पर स्वामी दयानन्द सरस्वती, महात्मा गांधी और डॉ. राममनोहर लोहिया की परम्परा को आगे बढ़ा रहे हैं।

डॉ. वेद प्रताप वैदिक ने 13 वर्ष की अल्पायु में ही 1957 ई. में हिन्दी के लिए सत्याग्रह किया और जेल गये। उनके जीवन की यह पहली जेल-यात्रा थी। बाद के वर्षों में तो वे अनेक बार कभी भाषा के मुद्दे पर कभी छात्रान्दोलनों में सक्रियता के कारण जेल गये। जवाहरलाल नेहरू

विश्वविद्यालय के शोध छात्र के रूप में उन्हें भी हिन्दी में शोध-कार्य करने के लिए कड़ा संघर्ष करना पड़ा। उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध पर हिन्दी में शोध ग्रन्थ दाखिल करने की अनुमति माँगी। विश्वविद्यालय प्रशासन ने अनुमति नहीं दी। वैदिक जी ने संघर्ष आरम्भ कर दिया। लड़ाई लम्बी चली। विश्वविद्यालय के 'स्कूल आफ इण्टरनैशनल स्टडीज' ने उनकी छात्रवृत्ति रोक दी। इतना ही नहीं उन्हें स्कूल से निकाल भी दिया। सन् 1966-67 में इस मामले को लेकर भारत की संसद में जबर्दस्त हंगामा हुआ। अपने समय के सबसे प्रभावशाली और सुख्यात प्रायः सभी सांसदों (डॉ. राम मनोहर लोहिया, मधुलिमये, आचार्य कृपलानी, प्रो. हीरेन मुखर्जी, प्रकाशवीर शास्त्री, अटल बिहारी बाजपेयी, चन्द्रशेखर, भागवत झा आजाद और हेम बरुआ आदि) ने वैदिक जी का समर्थन किया। अन्ततः श्रीमती गांधी की पहल पर स्कूल के संविधान में संशोधन किया गया और वैदिक को वापस लिया गया। इस घटना के बाद तो वे हिन्दी की अस्मिता और उसके लिए किए जाने वाले संघर्ष के राष्ट्रीय प्रतीक बन गये।

हिन्दी भाषा की प्रतिष्ठा के लिए संघर्ष करने वाले अनन्य हिन्दी समर्थक

डॉ. आरती सिंह*

भारतवर्ष में हिन्दी भाषा को सार्वजनीन और राष्ट्रव्यापी बनाने में कुछ वरेण्य मनीषियों की भी भूमिका रही है। स्वाधीनता संग्राम की लड़ाई में अहम् भूमिका निभाने वाले कुछ महत्त्वपूर्ण नेताओं ने इस कार्य में महत्वपूर्ण दायित्व का निवर्हन किया तथा अनेकानेक संस्थाओं के द्वारा भी सुप्रयास किया गया है। इन सारे सन्दर्भो को हम रचना सापेक्ष, आन्दोलन परक और प्रसारपरक रूप में देखते है। रचनात्मक भूमिका के अन्तर्गत पुस्तक प्रकाशन, पत्रिकाओं का प्रकाशन, तमाम धर्मोपदेशकों के प्रवचन, विद्वानों के व्याख्यान आदि सम्मिलित हैं।

महर्षि दयानन्द सरस्वती गुजराती भाषी होते हुए भी ये जान चुके थे कि भारत की जनता से सही और पूर्ण संवाद हिन्दी में ही सम्भव है। अपनी कृति 'सत्यार्थ प्रकाश' को हिन्दी में लिखकर स्वामी जी ने एक बहुत बड़ी क्रान्ति का सूत्रपात किया। यह भी एक सुखद संयोग है कि इस कृति के हिन्दी में प्रकाशन का आग्रह अपने समय के एक महान विचारक एवं समाज सुधारक बांग्ला भाषी केशव चन्द ने किया था। 'सत्यार्थ प्रकाश' का हिन्दी में प्रकाशन राष्ट्रीय गौरव का परिचायक और जनक्रान्ति का सूत्रपात करता है।

आरम्भ में सामाजिक सुधार के आन्दोलन चलाने वाले नेताओं विशेषकर अहिन्दी भाषी नेताओं ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में समर्थन एवं हिन्दी की प्रतिष्ठा के लिए संघर्ष किया। प्रसिद्ध समाज सुधारक केशवचन्द सेन ने सारे देश की राष्ट्रभाषा हिन्दी को मानने का विचार रखा। 1873 ई. में उन्होंने बांग्ला पत्र 'सुलभ समाचार' में भारतीय एकता के लिए हिन्दी को 'भारत की मातृभाषा' मानने की अपील की। उसके कुछ ही समय बाद बंगाल के प्रसिद्ध उपन्यासकार बंकिम चन्द चटर्जी अपना मत प्रकट किया कि हिन्दी एक दिन भारत की राष्ट्रभाषा होकर रहेगी। स्वामी श्रद्धानन्द ने हिन्दी के प्रचार के लिए दक्षिण में अनेक कार्यकर्ता भेजे जिसमें प्रमुख नाम है सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार पण्डित देवेश्वर और पण्डित धर्मदेव विद्या मार्तण्डे। बांग्ला भाषी बंकिमचन्द चट्टोपाधयाय कहते हैं

*प्रभारी हिन्दी विभाग, महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर

कि ''हिन्दी भाषा की सहायता से भारत वर्ष के विभिन्न प्रदेशों में जो लोग ऐक्य स्थापित कर सकेंगे वे ही सच्चे 'भारत-बन्धु' की संज्ञा पाने के योग्य होंगे।''[1]

हिन्दी का समर्थन करते हुए मराठी भाषी पं. बाबूराय विष्णु पराड़कर कहते है-''यदि हम एक राष्ट्र होना चाहते है, संसार में अपना गौरव-मंडित पद ग्रहण करना चाहते है, तो हमारा कर्त्तव्य है कि हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाने में यथाशक्ति सहयोग करें।''[2] प्रबल समाज सुधारक मराठी भाषी विष्णु सखाराम खाण्डेकर हिन्दी का सम्मान करते हुए कहते हैं- ''हिन्दी ही हमारे राष्ट्रीय एकीकरण का सबसे शक्तिशाली और प्रधान माध्यम है। यह किसी प्रदेश या क्षेत्र की भाषा नहीं, बल्कि समस्त भारत की 'भारती' के रूप में ग्रहण की जानी चाहिए।''

सन् 1912 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के चौथे अधिवेशन की अध्यक्षता स्वामी श्रद्धानन्द ने की थी और अपने अध्यक्षीय भाषण में स्पष्ट किया कि हमारी संस्कृति के अहिंसा, मातृ शक्ति का सत्कार और ब्राह्मणत्व जैसे प्रधान गुण परकीय भाषा द्वारा प्रस्फुटित नहीं हो सकते हैं। हम अपने राष्ट्र का निर्माण अपनी भाषा हिन्दी में ही कर सकते हैं।

पंजाबी भाषी लाला लाजपात राय भी हिन्दी के घोर समर्थक थे। कांग्रेस के 1896 के अधिवेशन में लाला लाजपत राय ने अपना भाषण हिन्दी में दिया शेष सारे लोग अपनी बात अंग्रेजी में कहे। 'जलियावाला बाग हत्याकाण्ड' (1919) के बाद अमृतसर अधिवेशन में स्वामी श्रद्धानन्द ने हिन्दी में भाषण करते हुए अंग्रेजो की फूट डालने वाली हरिजन नीति का विरोध किया और कांग्रेस को हिन्दी के प्रयोग का परामर्श दिया। इस भाषण को सुनकर गुजराती भाषी महात्मा गांधी ने कहा कि हिन्दी में राष्ट्रभाषा बनने की पूरी क्षमता है।

लाला लाजपत राय भी हिन्दी को राष्ट्रभाषा मानने के पक्षधर थे। पंजाब में जब हिन्दी उर्दू का विवाद चल रहा था, तब उन्होंने हिन्दी का पक्ष लिया था। उन्हीं के प्रयत्न से पंजाब के शिक्षा क्षेत्र में हिन्दी को स्थान मिला। उन्होने अनेक शिक्षण संस्थाओं की स्थापना की, जिसमें हिन्दी का अध्ययन अनिवार्य बनाया गया। लाला जी की प्रेरणा से ही पंजाब विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में हिन्दी को स्थान मिला। इस सम्बन्ध में किशोरी दास बाजपेयी ने लिखा है-''इस संघर्ष के फलस्वरूप सच्ची राष्ट्रीयता का जागरण हो रहा था। राष्ट्रभाषा की चर्चा जोरों से चल रही थी। अनेक बंगाली, गुजराती, पंजाबी और महाराष्ट्री नेता यह उद्योग कर रहे थे कि अपने राष्ट्र की एक राष्ट्रभाषा होनी चाहिए जो अन्तरप्रांतीय व्यवहार का माध्यम बन सके, और आगे चलकर जब देश स्वतन्त्र हो तो यही अपनी राष्ट्रभाषा अंग्रेजी भाषा का स्थान ग्रहण करके समस्त देश की केन्द्रीय सरकार की भाषा बने।''[3]

मराठी भाषी लोकमान्य बालगंगाधर तिलक एक सशक्त समाज सुधारक नेता रहे। स्वदेशी वस्तु स्वराज्य, स्वभाषा और राष्ट्रीय शिक्षा इनके आन्दोलन के महत्वपूर्ण अंग थे। इन्होंने भी राष्ट्रभाषा

के रूप में हिन्दी को स्वीकार करने का विचार व्यक्त किया। उनका विचार है कि हिन्दी एकमात्र भाषा है जो राष्ट्रभाषा हो सकती है। हिन्दी भाषा के समर्थन में उन्होंने कहा था - ''यह आन्दोलन उत्तर भारत में केवल एक सर्वमान्य लिपि के प्रचार के लिए नहीं है। यह तो उस आन्दोलन का एक अंग है, जिसे मैं राष्ट्रीय आन्दोलन कहूँगा और जिसका उद्देश्य समस्त भारतवर्ष के लिए एक राष्ट्रीय भाषा की स्थापना करना है, क्योंकि सबके लिए समान भाषा राष्ट्रीयता का महत्वपूर्ण अंग है।''[4] तिलक जहाँ हिन्दी को राष्ट्रभाषा मानते थे, वहीं देवनागरी को राष्ट्रलिपि, राष्ट्रीय चेतना को प्रबल करने के लिए उन्होंने सन् 1903 ई. में 'हिन्दी केशरी' नामक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया था। उन्होंने हिन्दी में भाषण करके भी अन्य नेताओं के समक्ष एक आदर्श प्रस्तुत किया। हिन्दी का मान बढ़ाते हुए उन्होंने कहा था ''सरलता और शीघ्र सीखी जाने योग्य भाषाओं में हिन्दी सर्वोपरि है। राष्ट्र के एकीकरण के लिये सर्वमान्य भाषा से अधिक बलशाली और कोई तत्व नहीं। मेरे विचार से हिन्दी ऐसी ही भाषा है''।[5]

सन् 1901-02 में ही मराठी भाषी विनायक दामोदर सावरकर ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार करने पर जोर दिया। अपने एक लेख में उन्होंने लिखा था- ''हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार करने में अन्य प्रांतो की भाषा के सम्बन्ध में कोई अपमान की भावना या ईर्ष्यालु भावना नहीं है। हमें अपनी प्रान्तीय भाषाओं से भी उतना प्रेम है, जितना हिन्दी से। ये सब भाषाएँ अपने-अपने क्षेत्र में उन्नत होती रहेंगी। वास्तव में कुछ प्रान्तीय भाषाएं हिन्दी से अधिक सम्पन्न हैं परन्तु फिर भी हिन्दी अखिल हिन्दुत्व की राष्ट्रभाषा होने के लिए सब प्रकार श्रेष्ठ है।''[6]

सावरकर जब इंग्लैण्ड में पढ़ रहे थे तभी उन्होंने सशस्त्र क्रांतिकारी दल की स्थापना की थी। इस दल में अधिकतर वे छात्र थे जो भारत से इंग्लैण्ड शिक्षा प्राप्त करने के लिए गये थे। वे आपस मे अंग्रेजी में ही बातचीत या विचार-विमर्श करते थे। राष्ट्रीय भावना उन्हें एक विदेशी भाषा का मुँहताज होने पर लज्जित करती थी। इस पर उन्होंने निश्चय किया कि हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी है और हम लोग आपस में उसी का व्यवहार करेंगे। चिपलूणकर और आरकर जैसे क्रान्तिकारियों ने भी राष्ट्रभाषा के पद पर हिन्दी को ही प्रतिष्ठित करने का समर्थन किया।

हिन्दी भाषा को प्रतिष्ठित करने में जास्टिस शारदाचरण मित्र का भी बहुत बड़ा योगदान है उन्होंने अपने लेख में; जो हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रथम अधिवेशन (1910 ई.) के लिए लिखा गया था, कहा था- ''हिन्दी समस्त आर्यावर्त (भारत) की भाषा है.... यद्यपि मैं बंगाली हूँ, तथापि मेरे दफ्तर की भाषा हिन्दी है। इस वृद्धावस्था में मेरे लिए वह गौरव का दिन होगा, जिस दिन मैं हिन्दी स्वच्छन्दता से बोलने लगूँगा और प्लेटफार्म के ऊपर खड़ा होकर हिन्दी में वक्तृता दूँगा। उसी दिन मेरा जीवन सफल होगा, जिस दिन मैं सारे भारतवासियों के साथ साफ हिन्दी में वार्तालाप करूँगा।''[7]

हिन्दी को लेकर जोरदार आन्दोलन बाबू भूदेव मुखोपाध्याय भी कर रहे थे- वे आम जनता की माँग का प्रतिनिधित्व कर रहे थे कि- अदालतों की भाषा सरल सुबोध और नागरी लिपि में लिखित हिन्दी होनी चाहिए। इसके लिए सार्वजनिक रूप से भी अनेक प्रस्ताव पारित किये गये और सरकार की सेवा में स्मरण पत्र भेजे गये। फलस्वरूप 1873 ई. में सरकार ने यह आदेश जारी किया कि बिहार की अदालतों और दफ्तरों में सभी विज्ञाप्तियाँ और घोषणाएँ हिन्दी में भी जारी की जाएँ।

हिन्दी के समर्थन में पं. मदन मोहन मालवीय के नेतृत्व में एक जोरदार आन्दोलन आरम्भ हुआ। मालवीय जी ने नागरी लिपि के समर्थन मे 'कोर्ट कैरेक्टर एण्ड प्राइमरी एजुकेशन इन नार्थ वेस्टर्न प्रोविन्सेज' नामक पुस्तिका लिखी। उन्होंने जनगणना के प्रतिवेदनों तथा शिक्षा विभाग के वार्षिक प्रतिवेदनों के आँकड़े देकर सिद्ध किया कि हिन्दी भाषा बोलने तथा लिखने-पढ़ने वालों की संख्या उर्दू वालों से कई गुनी अधिक है। सन् 1898 ई. के आरम्भ में सत्रह सदस्यों का एक तगड़ा डेपुटेशन, जिसमें पं. मदन मोहन मालवीय, सर सुन्दर लाल, राजा मांडा, राजा आवागढ़ जैसे प्रभावशाली व्यक्ति थे, ये लोग प्रांतीय गवर्नर के पास गये जिसके अध्यक्ष अयोध्या नरेश महाराज प्रताप नारायण सिंह थे।

हिन्दी के विकास एवं समर्थन में गांधी जी के योगदान की एक लम्बी श्रृंखला है। गांधी जी ने 18 अगस्त 1906 को 'इंडियन ओपिनियन' नामक अपनी पत्रिका में कहा था कि- ''जब तक भारत के विभिन्न प्रदेशों में रहने वाले भारतीयों में से ज्यादातर लोग एक ही भाषा नहीं बोलने लगते, तब तक वास्तविक रूप में भारत एक राष्ट्र नहीं बन सकता। विभिन्न प्रदेशों में अंग्रेजी बोलने वाले काफी मिल जाते हैं, किन्तु उनकी संख्या बहुत थोड़ी है, और हमेशा थोड़ी ही रहेगी। इसलिए यह सम्भव नहीं कि अंग्रेजी के जरिये भारत एक राष्ट्र बन जाए। अतः भारतीयों को भारत की ही कोई भाषा पसन्द करनी पड़ेगी।''[8]

गांधी जी के अनुसार यह भाषा हिन्दी हो सकती है, क्योंकि यह उत्तर भारत में सब लोग बोलते है। ....चूंकि फकीर और सन्यासी यही भाषा बोलते है। इसलिए इसका प्रसार सब जगह होता है। अनेक अंग्रेज भी इसे सीखते है। इस भाषा का बड़ा फैलाव है। हर पाठशाला में हिन्दी भाषा का शिक्षण दिया जाना चाहिए। माता-पिता को भी चाहिए कि वे अपने बच्चों में बचपन से हिन्दी बोलने की आदत डालें।

रविन्द्रनाथ ठाकुर ने भी 1908 ई. में हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप अपनाने की सलाह दी थी। उन्होंने कहा था ''यदि हम प्रत्येक भारतीय नैसर्गिक अधिकारों के सिद्धान्त को स्वीकार करते हों, तो हमें राष्ट्रभाषा के रूप में उस भाषा को स्वीकार करना चाहिए जो देश के सबसे बड़े भू-भाग में बोली जाती है और जिसे स्वीकार करने की सिफारिश महात्मा गांधी ने हम लोगों से की है। इसी विचार से हमें एक भाषा की भी आवश्यकता है और वह हिन्दी है।''[9]

''सन् 1916 ई. के फरवरी महीने में मालवीय जी के निमन्त्रण पर गांधी जी ने नागरी प्रचारिणी सभा और काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में दो व्याख्यान दिये, उन्होंने हिन्दी के प्रयोग के प्रचार पर बल दिया।''[10] अपने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाले भाषण में उन्होंने कहा था कि - ''क्या कोई व्यक्ति स्वप्न में भी यह सोच सकता है कि अंग्रेजी भविष्य में किसी भी दिन भारत की राष्ट्रभाषा हो सकती है?'' इसी भाषण में गांधी जी ने यह भी कहा कि अंग्रेजी भाषा भारतीय राष्ट्र के पाँव में बेड़ी बनकर पड़ी हुई है।''[11]

मई, 1917 ई. में गांधी जी ने हिन्दी के समर्थन में अपने लेख में लिखा था- ''हिन्दी ही हिन्दुस्तान के शिक्षित समुदाय की सामान्य भाषा हो सकती है। यह निर्विवाद सिद्ध है।''[12] ''1 जुलाई 1917 ई. को गांधी जी ने सत्याग्रह आश्रम कोश के लिए मोतीहारी (बिहार) से एक परिपत्र जारी किया जिसमें उन्होंने राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी को मान्यता देने तथा इसका व्यापक प्रचार करने पर बल दिया।''[13] इस हवा का असर अहिन्दी भाषी वक्ताओं पर भी पड़ने लगा था। रवीन्द्रनाथ ठाकुर, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, सुब्रह्मण्य भारती, रामस्वामी नायकर, श्री गुरूगनार आदि साहित्य और नेता सभाओं में हिन्दी में भाषण देने की कोशिश करने लगे थे और राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी के प्रचार के समर्थक हो गये थे। श्री राजगोपालाचारी ने हिन्दी प्रचारक के 'छात्रों से अपील' नामक एक लेख लिखा था जिसमें उन्होंने हिन्दी को राष्ट्रभाषा, उसे सीखने पर जोर दिया था।[14]

सन् 1935 ई. में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का 24वाँ अधिवेशन पुनः इंदौर में आयोजित हुआ और गांधी जी दूसरी बार उसके सभापति चुने गये। गांधी जी अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा- ''यदि हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाना है, तो प्रचार कार्य सर्वव्यापी और सुसंगठित होना चाहिए। अगर हिन्दुस्तान को सचमुच एक राष्ट्र बनाना है, तो चाहे कोई माने या न माने, राष्ट्रभाषा हिन्दी ही बन सकती है। सारे देश के पारस्परिक व्यवहार के लिए हिन्दी और अन्तर्राष्ट्रीय उपयोग के लिए अंग्रेजी का व्यवहार हो।''[15]

गांधी जी ने बंगाल, असम, उड़ीसा में भी हिन्दी के प्रचार प्रसार का आरम्भ किया। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के चौबीसवें अधिवेशन में भाषण में भी उन्होंने हिन्दी की वकालत की। हिन्दी साहित्य सम्मेलन का पच्चीसवां अधिवेशन नागपुर में हुआ जिसके सभापति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद थे। गांधी जी से कहा कि हिन्दी प्रचार समिति का संगठन किया जाए और इसका कार्यालय वर्धा में रखा जाए। इसी के फलस्वरूप 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा', का संगठन किया। गांधी जी कहते है- ''जिस राष्ट्र की अपनी कोई राष्ट्रभाषा नहीं होती वह राष्ट्र गूँगा होता है किसी भी देश की राष्ट्रभाषा वही हो सकती है जो वहाँ का अधिकांश जनता बोलती हो। वह सांस्कृतिक, राजनैतिक और आर्थिक क्षेत्र के माध्यम बनने की शक्ति रखती हो। जिसे सुगमता और सरलता से लिखा जा सकता हो... जो सम्पूर्ण राष्ट्र की वाणी बनने की क्षमता रखती हो। बहुभाषी भारत में केवल हिन्दी ही एक भाषा है।

जिसमें ये सभी गुण पाये जाते है।''[16].....

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने तो सन् 1936 ई. में हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए वर्धा में 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' की स्थापना ही इस भावना से की थी। समिति का ध्येय-वाक्य 'एक हृदय हो भारत जननी' समस्त भारतीय भाषाओं के बहनापे की ही तो उद्घोषणा करता है। भारतीय भाषाओ की समृद्धि का उल्लेख करते हुए हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करने का कोई भी प्रयास दुर्भाग्यपूर्ण ही माना जायेगा। इस दुराग्रह का समुचित उत्तर तो बंकिमचन्द्र, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और केशवचन्द्र, ने भारतीय भाषाओं के अन्तर्सम्बन्धों का उल्लेख करते हुए दशकों पूर्व ही दे दिया था जो इस प्रकार है-

''आधुनिक भारत की संस्कृति एक विकसित शतदल के समान है जिसका एक-एक दल एक-एक प्रान्तीय भाषा और उसकी साहित्य संस्कृति है। किसी एक को मिटा देने से उस कमल की शोभा नष्ट हो जायेगी। हम चाहते है कि भारत की सब प्रान्तीय भाषाएं जिनमें सुन्दर साहित्य की सृष्टि हुई है, अपने-अपने घर में रानी बनकर रहें। प्रान्त के जनगण की हार्दिक चिन्ता की प्रकाश भूमि स्वरूप कविता की भाषा होकर रहें और आधुनिक भाषाओं के हार के रूप में मध्य-मणि हिन्दी भारत-भारती होकर विराजती है।''[17]

इसी क्रम में काका साहेब कालेकर की अध्यक्षता में 2 मई 1942 ई. को वर्धा में हिन्दुस्तानी प्रचार सभा की स्थापना की गयी, जिसका उद्देश्य राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दुस्तानी का प्रचार करना था। 25 जनवरी 1946 को मद्रास में राष्ट्रीय भारत हिन्दी प्रचार सभा की रजत जयन्ती के अवसर पर दिये गये भाषण में गांधी जी ने कहा कि ''हिन्दुस्तानी की सेवा करने को मैं 125 वर्ष तक जिन्दा रहना चाहता हूँ। ... हमारी सभा का नाम हिन्दी प्रचार सभा है। अब इसका नाम हिन्दी प्रचार सभा नहीं रहेगा। हिन्दी शब्द के बदले अब हिन्दुस्तानी शब्द लेना होगा।''[18]

हिन्दी के समर्थन में बांग्ला भाषी नेता जी सुभाष चन्द बोस का कथन है- ''देश के सबसे बड़े भूभाग में बोली जाने वाली हिन्दी ही राष्ट्रभाषा पद की सही अधिकारिणी है।'' हिन्दी भाषा को प्रतिष्ठित करने वाले महत्वपूर्ण समाज सुधारकों, राजनेताओं के अतिरिक्त साहित्यकारों की भी महती भूमिका रही है। आठवें दशक में ही बहुसंख्यक जनता की भावनाओं के सच्चे प्रतिनिधि के रूप में बाबू हरिश्चन्द्र (जन्म : 1850 ई.) का उदय हुआ, जिन्हें बाद में जनता ने 'भारतेन्दु' की उपाधि प्रदान की। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की साहित्य-साधना का सूत्रवाक्य है: ***'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल'।*** हरिश्चन्द्र का जन्म एक राजभक्त, वैश्य परिवार में हुआ था, पर भगवान उन्हें सामान्य जनता की आशा-आकांक्षाओं का प्रतीक बनाकर इस धरती पर भेजा था। वे भाषा की उन्नति को देश की उन्नति का मूल कारण मानते थे और इसलिए उन्होंने हिन्दी भाषा की उन्नति के लिए न केवल अपनी सारी सम्पत्ति वरन् अपना पूरा जीवन ही अर्पित कर दिया। हिन्दी गद्य को व्यवस्थित

करने के लिए कविवचन सुधा, हरिश्चन्द्र चन्द्रिका और बाला बोधिनी जैसी पत्रिकाएं निकाली और उनमें तरह-तरह के नाटक, निबन्ध, प्रकाशित कर हिन्दी भाषा और साहित्य की सुदृढ़ नींव रखनी शुरू की।

भारतेन्दु से साहित्य सेवा और देशहित की प्रेरणा पाकर बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, चौधरी बदरी नारायण उपाध्याय 'प्रेमधन', लाला श्रीनिवास दास, राधाकृष्ण दास, राधा चरण गोस्वामी, ठाकुर जगमोहन सिंह और अनेक लेखक साहित्य सेवा के मैदान में उतरे और पत्रिका-प्रकाशन के अतिरिक्त साहित्य की विविध विधाओं को समृद्ध किया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके सहयोगी साहित्यकारों ने हिन्दी और नागरी के जन आन्दोलन को भी गति और शक्ति प्रदान की तथा भारतेन्दु के नेतृत्व में लेखकों और पत्रकारों का एक बड़ा दल हिन्दी के पक्ष में सक्रिय हो गया। भारतेन्दु ने अनेक नगरों में धूम-धूम कर हिन्दी भाषा और नागरी लिपि की उपयोगिता पर प्रकाश डाला। प्रताप नारायण मिश्र ने भी हिन्दी-हिन्दू-हिन्दूस्तान का नारा बुलन्द किया। बाबू तोता राम ने हिन्दी भाषा और नागरी लिपि के प्रचार के लिए अलीगढ़ में 'भाषा संवर्द्धिनी सभा' की स्थापना की। ''सन् 1884 ई. में 'हिन्दी उद्धारिणी प्रतिनिधि मध्य सभा'' के नाम से प्रयाग में स्थापित की गयी थी।''[19]

सन् 1882 ई. में मित्र विलास के सम्पादक पं. गोपीनाथ ने उर्दू के स्थान पर हिन्दी को प्रतिष्ठित करने के लिए लाहौर के रईसों की ओर से शिक्षा आयोग के पास एक स्मरण पत्र भिजवाने का प्रयत्न किया गया था। अक्टूबर 1882 ई. के हिन्दी प्रदीप में राधाचरण गोस्वामी ने एक विज्ञापन निकाला था, जिसमें लोगों से निवेदन किया गया था कि वे अदालतों में हिन्दी भाषा और नागरी अक्षरों के प्रचलन के लिए अधिकाधिक संख्या में मुद्रित मेमोरियल पर हस्तक्षर कर भेजें। अनेक हिन्दी प्रेमी जन और हिन्दी की संस्थाएँ इस कार्य मे संलग्न थी।

सरस्वती का सम्पादन हाथ में लेते ही पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी ने राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी को सामने करना आरम्भ कर दिया था। उन्होंने सरस्वती के सितम्बर से नवम्बर 1903 ई. के अंको में अपने 'देशव्यापक भाषा' शीर्षक निबन्ध में गुजराती, बांग्ला, मराठी आदि भाष्य-भाषियों से हिन्दी को देशव्यापी भाषा के रूप में अपनाने का आग्रह किया था। इसके साथ ही उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया था कि- ''देशव्यापक भाषा के लिए केवल इतना ही आवश्यक है कि इस विस्तीर्ण देश में जितनी भिन्न-भिन्न भाषाएं प्रचलित हैं, उनके उत्तमोत्तम ग्रंथों का प्रतिबिम्ब देशव्यापक भाषा में उतारा जाये। प्रत्येक मनुष्य को अपनी-अपनी भाषा के साहित्य के साथ-साथ हिन्दी के साहित्य के उत्कर्ष के लिए हृदय से प्रयत्न करना चाहिए और वह सुगमता से देश की व्यापक भाषा हो जाएगी।''[20]

इस प्रकार स्वतन्त्र भारत में हिन्दी का विकास एक महत्वपूर्ण घटना है। निसन्देह इसका सर्वाधिक श्रेय अहिन्दीभाषी क्षेत्र के समाज सुधारकों, राजनीतिज्ञों और साहित्यकारों को है। इनमें

गांधी जी का नाम सर्वोपरि है। देश में हिन्दी भाषा को प्रतिष्ठित कराने, उसका सारे देश में प्रचार-प्रसार करने में उनका योगदान अद्वितीय है। राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त ने 'भारत-भारती' में उद्घोषणा की थी-

''है भव्य भारत ही हमारी मातृभूमि हरी-भरी।
हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा और लिपि है नागरी।।''

देश को भाषाई दृष्टि से जोड़ने के लिए हिन्दी ही एक मजबूत कड़ी है।

उसकी किसी भाषा से किसी प्रकार की प्रतिद्वन्द्विता नहीं है। हिन्दी का विरोध सम्भव नहीं है-

''एक डोर में सबको जो है बांधती, वह हिन्दी है।
हर भाषा को सगी बहन जो मानती, वह हिन्दी है।
भरी पूरी हो सभी भाषाएँ, यही कामना हिन्दी है।
गहरी हो पहचान आपसी, यही साधना हिन्दी है।।''

सन्दर्भ -

1. 'अक्षरा पत्रिका' प्रकाशन, जनवरी-फरवरी 2016 पृष्ठ 61, मध्यप्रदेश 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' हिन्दी भवन श्यामला हिल्स, भोपाल।
2. वही पृष्ठ 62
3. किशोरी वाजपेयी, राष्ट्रभाषा इतिहास, पृ. 18-19 (मलिक मुहम्मद द्वारा 'राजभाषा हिन्दी: विकास के विविध आयाम' पृ. 96 पर उद्धत)
4. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष 57 सं. 2009, अंक 1, पृ. 66 (मलिक मुहम्मद 'राजभाषा हिन्दी: विकास के विविध आयाम' पृ. 101 पर उद्धत)
5. अक्षरा पत्रिका, प्रकाशन, जनवरी-फरवरी 2016 पृ. 61, मध्यप्रदेश 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' हिन्दी भवन श्यामला हिल्स, भोपाल।
6. रामधारी सिंह दिनकर, 'राष्ट्रभाषा आन्दोलन और गांधी जी' पृ. 37
7. वही पृ. 42
8. हिन्दी भाषा का विकास - गोपाल राय, अनुपम प्रकाशन पटना, पृ. 190
9. कलकत्ता, हिन्दी क्लब बुलेटिन, सितम्बर, 1908 (मलिक मुहम्मद, 'राजभाषा हिन्दी: विकास के विविध आयाम, पृ. 94-95 पर उद्धत)
10. रामधारी सिंह 'दिनकर' राष्ट्रभाषा आन्दोलन और गांधी जी, पृ. 45
11. वही पृ. 47
12. वही पृ. 45

13. सम्पूर्ण गांधी वाङ्गमय, खण्ड 13, पृ. 425

14. रामधारी सिंह 'दिनकर' 'राष्ट्रभाषा आन्दोलन और गांधी जी, पृ. 88

15. वही पृ. 91

16. हिन्दी नवजीवन, 15.12.27 (राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी, पृ. 44)

17. अक्षरा पत्रिका, प्रकाशन जनवरी-फरवरी 2016, पृ. 62, मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति हिन्दी भवन श्यामला हिल्स, भोपाल।

18. वहीं पृ. 62

19. राष्ट्रभाषा आन्दोलन और गांधी जी, पूर्वोल्लिखित, पृ. 115

20. 'अक्षरा पत्रिका' प्रकाशन जनवरी-फरवरी 2016 पृ. 61 'मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' हिन्दी भवन, श्यामला हिल्स भोपाल।

हिन्दी का वैश्विक परिदृश्य

डॉ. कृष्णकान्त दीक्षित*

भाषा ही किसी देश की अस्मिता की द्योतक तथा सम्पूर्ण परम्परा की संवाहिका होती है। "भाषा और शिक्षा मनुष्य की मूल संवेदना का विकास करती है तथा उसे जातीय एवं राष्ट्रीय जीवन से सम्बद्ध करती है।"

वैश्विक परिदृश्य की दृष्टि से हिन्दी भारत की राजभाषा एवं सम्पर्क भाषा के राजमार्ग में आरूढ़ होती हुई विश्व की लोकप्रिय तथा सर्वाधिक लोगों द्वारा समझी जाने वाली भाषा है। आज हिन्दी संसार की भाषाओं में द्वितीय स्थान पर है, प्रथम स्थान पर चीन, द्वितीय पर हिन्दी एवं तृतीय स्थान अंग्रेजी का है। अंग्रेजी बोलने वालों की संख्या में जब भी वृद्धि होगी तब भारत के सहभाग से ही होगी। किसी भी भाषा को विश्व भाषा की कसौटी में खरा उतरने के लिए तीन सोपानों से गुजरना होता है- (1) वैश्विक चेतना (2) विश्व के अधिकाधिक लेखक-विचारक उस भाषा में कार्य करते हों। (3) उस भाषा के प्रयोक्ता विश्व के अधिकाधिक देशों में व्याप्त हों। हिन्दी भाषा इन तीनों ही कसौटियों पर खरी उतरती है।

डॉ. शुभदा बांजपे के अनुसार- "जर्मनी के 17 तथा अमेरिका के 33 विश्वविद्यालयों, लन्दन, मास्को जैस अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालयों में नियमित हिन्दी विभाग हैं, जिनमें हिन्दी उच्च अध्ययन, पठन-पाठन एवं शोध की सुविधाएँ उपलब्ध हैं। इंग्लैण्ड और कनाडा की भी यही स्थिति है।"[1]

विश्व के अनेक देशों में हिन्दी विद्वानों की पहचान बनी है। यथा- राजेन्द्र अरुण, शुचिता, रामदेवी धुरन्धर (मॉरीशस), अचला शर्मा, ओमकारनाथ श्रीवास्तव (ब्रिटेन), रवि महाजन (ट्रिनिडाड), फादर कामिल बुल्के (बेल्जियम), विवेकानन्द शर्मा (फिजी), मारिया नैयेसी (हंगरी), पी.ए. बारान्निकोव (रूस) जैसे और भी उल्लेखनीय नाम हैं। इन विदेशी अध्येताओं ने हिन्दी को वैश्विकता दी है।

आज के जनसंचार माध्यमों ने शताब्दियों से लोक माध्यमों द्वारा संरक्षित भारतीय धरोहरों (उ.

*एसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी), डी.ए-वी. कॉलेज, कानपुर

प्र. की नौटंकी, पंजाब के गिद्दा, छत्तीसगढ़ की पंडवानी तथा ऐसी ही अनेक लोक प्रस्तुतियाँ) को वैश्विक आकाश दिया है।

विश्व हिन्दी सम्मेलन भी हिन्दी को वैश्विक धरातल पर प्रतिष्ठित करने में अभूतपूर्व योगदान दे रहे हैं। नागपुर से प्रारम्भ हुआ विश्व हिन्दी सम्मेलन सतत गतिशील है। मॉरीशस में हुए चतुर्थ विश्व हिन्दी सम्मेलन में भारत में अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय द्वारा मॉरीशस में विश्व हिन्दी सचिवालय की स्थापना जैसे प्रस्ताव पारित हुए और उन्हें व्यावहारिक रूप भी प्रदान किया गया।

भारत सरकार द्वारा स्थापित केन्द्रीय हिन्दी संस्थानों में प्रतिवर्ष अनेक देशों के छात्र हिन्दी सीखने एवं हिन्दी साहित्य का अनुशीलन करने में गहरी अभिरुचि के साथ जुड़ते हैं। यह विदेशी छात्र विश्व पटल पर हिन्दी प्रेम की ज्योति विकीर्ण कर रहे हैं।

शब्दावली आयोग अनेक विषयों यथा- सामाजिक विज्ञान, प्रशासनिक, विधि तथा विज्ञान विषयों के अंग्रेजी शब्दों का हिन्दी रूपान्तरण कर हिन्दी को वैश्विक स्तर पर प्रतिष्ठित करने के लिए प्रयत्नशील हैं।

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की भूमिका हिन्दी को वैश्विकता प्रदान करने में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रही है। टी.वी., फिल्में, इण्टरनेट, सूचना प्रौद्योगिकी के कारण हिन्दी तेजी से विश्व पटल पर छलांग लगा रह है। माइक्रोसॉफ्ट, याहू जैसी विदेशी कम्पनियों ने अपनी वेबसाइट्स पर हिन्दी को स्थान दिया है। निम्नलिखित इण्टरनेट साइट पर हिन्दी सहित प्रमुख भारतीय भाषाओं के लिए सम्पर्क सूत्र, ई-मेल सॉफ्टवेयर की जानकारी उपलब्ध है-

- www.dictionary.com (इस पर विश्व की प्रमुख भाषाओं के शब्दकोश तथा व्याकरण से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त की जा सकती है।)
- www.indialanguages.com पर हिन्दी तथा प्रमुख भारतीय भाषाओं का साहित्य, समाचार-पत्र, ई-मेल जैसी जानकारी उपलब्ध है।
- www.hindi.net.com पर हिन्दी भाषा से सम्बन्धित सूत्र तथा जानकारी उपलब्ध है।
- www.jagransahitya.com
- www.amarujala.com
- www.bharatdarshan.com
- www.rajasthanpatrika.com
- www.prabhatkhabar.com[2]

दुनियाँ के लगभग 136 विश्वविद्यालयों में हिन्दी की पढ़ाई हो रही है। प्रतिदिन लगभग एक

करोड़ पत्र-पत्रिकाओं की बिक्री होती है। अमेरिका के लगभग 30 विश्वविद्यालयों में हिन्दी का अध्ययन हो रहा है। सारांश में दुनियाँ के लगभग सभी देशों ने अपने ज्ञान-वर्द्धन के लिए हिन्दी की ओर देखा है। हिन्दी को पोषित करने वाली प्राचीन भारतीय भाषाएँ संसकृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, ब्रज, अवधी जहाँ उसे शक्ति प्रदान करती है, वहीं भारतीय दर्शन और संस्कृति को जानने-समझने की जिज्ञासा भी उसे विश्व-स्तर पर प्रतिष्ठित करती है। ख्यातिलब्ध सन्त कामिल बुल्के का विचार था कि "सन्तुलन और समन्वय की विशेषता रखने वाली भारतीय संस्कृति को हिन्दी के द्वारा विश्वभर में पहुँचाया जा सकता है।" अधिकांश विदेशी हिन्दी प्रेमियों ने हिन्दी पढ़ने का कारण भरत का सांस्कृतिक प्रेम बताया। इसीलिए विश्व के अनेक देशों में हिन्दी की साहित्यिक पत्रिकाएँ निरन्तर प्रकाशित हो रही हैं। कुछ प्रमुख पत्रिकाएँ इस प्रकार हैं-

फिजी	-	'लहर', 'संस्कृति'
सूरीनाम	-	'सेतु-बन्ध', 'सरस्वती', 'भारतोदय'
यू.के.	-	'अमरदीप', 'चेतक', 'पुरवाई', 'प्रवासिनी हिन्दी'
मॉरीशस	-	'जनवाणी', 'रिमझिम', 'आक्रोश', 'मुक्ता'
अमेरिका	-	'सौरभ-भारती', 'विश्व', 'विश्व विवेक'

भूमण्डलीकरण और बाजारीकरण के इस दौर में भारत एक बड़ा बाजार है। इसलिए भी अन्य देश, इस देश में अपना माल बेचने के लिए हिन्दी जानने के लिए बाध्य हैं। आज दुनियाँ का कोई देश भारत की अनदेखी नहीं कर सकता है। इसीलिए इस देश की भाषा हिन्दी की भी अनदेखी नहीं की जा सकती, लाख अवरोधों के बाद भी यह बढ़ रही है और वैश्विक स्तर पर अपनी धाक-शान बढ़ाती ही जा रही है और बढ़ाती रहेगी।

वैश्वीकरण और सूचना क्रान्ति एक सिक्के के दो पहलू हैं। सूचना क्रान्ति के कारण हिन्दी को भी विस्तार मिला है। फेसबुक जैस सामाजिक नेटवर्किंग की साइटों के माध्यम से हिन्दी भाषा-भाषी वैश्विक स्तर पर अन्तरंगता स्थापित करने में सक्षम हो सके हैं। हिन्दी का साम्राज्य अनेक सूचना पोर्टलों एवं साइटों के माध्यम से इण्टरनेट पर विस्तार पा रहा है। यूनीकोड की व्यवस्था ने सूचना-तंत्र पर हिन्दी भाषा की भौगोलिक सीमाओं को ध्वस्त कर दिया है। तकनीकविदों ने ऐसा अनुभव किया है कि व्याकरण की वैज्ञानिकता की दृष्टि से कम्प्यूटर के लिए सर्वाधिक उपयुक्त भाषा संस्कृत है एवं उच्चारण और लेखन में समानता के कारण कम्प्यूटर के लिए सर्वाधिक उपयुक्त लिपि देवनागरी है। इस प्रकार हिन्दी वैश्विक स्तर पर तकनीकी चुनौतियों का सामना करने में पूर्णतया सक्षम सिद्ध हो रही है।

हिन्दी के विषय में मनीषियों की भविष्यवाणी सच सिद्ध हो रही है-

- "जितनी जल्दी हम हिन्दी को आधुनिक ज्ञान की सम्पूर्ण भाषा बना सकें, उतनी ही जल्दी वह.....राष्ट्रसंघ विश्व की भाषा बन जायेगी।"[3]

वस्तुतः विश्व पटल पर हिन्दी के बढ़ते प्रभाव को देखकर गणेश शंकर विद्यार्थी का विश्वास ही मूर्तरूप लेता दृष्टिगत हो रहा है-

- "एक दिन हिन्दी एशिया ही नहीं, विश्व की पंचायत में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करेगी।"[4]

हिन्दी का विश्व भाषा होने का सबसे बड़ा गुण उसका संस्कृत से सम्बन्धित होना है। हिन्दी में आर्य, द्रविड़, स्पेनी, पुर्तगाली, जर्मन, फ्रेंच, अंग्रेजी, अरबी, फारसी, चीनी, जापानी भाषाओं के शब्द समाहित हैं, जो इसकी उदारता, 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की प्रवृत्ति उजागर करते हैं। सारांशतः नव्यतम तकनीक के साथ-साथ कदम मिलाती देश के अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में शान्त होता विरोधी स्वर, तथा वहाँ हिन्दी के प्रसार के लिए खोले गये संस्थानों, प्रवासी भारतीयों द्वारा अपनी भाषा, संस्कृति की जड़ों से जुड़े रहने की ललक, देश के शीर्ष, सम्मानित नेताओं पूर्व प्रधानमंत्री अटल जी एवं वर्तमान प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा विश्व मंच पर हिन्दी में दिये गये भाषण, सूचना एवं संचार संसाधनों का कमाल हिन्दी को सम्पूर्ण विश्व पटल पर छा जाने के लिए सहयोगी भूमिका का निर्वाह कर रहा है। विश्व का मुकुट इसके शीश पर विराजित है, यह गौरवपूर्ण है।

सन्दर्भ ग्रन्थः

1. डॉ. शुभदा बांजपे : हिन्दी वर्तमान परिदृश्य स्थिति एवं गति संवाहिका, पृ. 48
2. डॉ. संजय शर्मा एवं डॉ. रुखसाना अल्ताफ पठान : सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हिन्दी तथा जनसंचार माध्यम, राष्ट्रीय संगोष्ठी संवाहिका, पृ. 19
3. अमर उजाला, मई 2006, पृ. 4
4. राष्ट्रभाषा सन्देश, 15 मई 1995, पृ. 8

वैश्विक परिदृश्य और हिन्दी

डॉ. कृष्ण कुमार* एवं सुबोध कुमार मिश्र**

यदि यह कहा जाए कि भूमंडलीकरण के इस दौर में हिन्दी का समृद्ध स्वरूप विश्व पर आच्छादित हो रहा है, तो शायद इसमें अतिशयोक्ति नहीं होगी। हिन्दी न सिर्फ गतिशील हुई है, अपितु इसने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहुंच को साबित कर दिखाया है। नेताओं, अभिनेताओं, व्यापारियों और उद्योगपतियों का एक बड़ा तबका, जो कल तक हिन्दी से परहेज करता था, आज उसकी तरफ उन्मुख है। हिन्दी के प्रति जागरूकता बढ़ी है। इसका विस्तार हो रहा है।

पठन-पाठन, व्यापार, मीडिया, विज्ञापन आदि क्षेत्रों में हिन्दी की पकड़ मजबूत हुई है। सूचना एवं सम्प्रेषण का सशक्त माध्यम बन चुकी है हिन्दी। इसका फलक दिनोंदिन विस्तृत हो रहा है विदेशों में न सिर्फ हिन्दी जानने वालों की संख्या बढ़ रही है, अपितु इसके बोलने वालों की संख्या भी बढ़ी है। हिन्दी का विश्व फलक पर प्रभावी उपस्थिति दर्ज करवाना यकीनन एक महत्वपूर्ण घटना है। रुपये को अंतर्राष्ट्रीय प्रतीक मिलने को भी हिन्दी के बढ़ते कदमों से जोड़कर देखा जा रहा है। शनैः-शनैः हिन्दी गति और लय पकड़ रही है।

पिछले कुछ वर्षों में विदेशों में हिन्दी का दबदबा बढ़ा है। विदेशी विश्वविद्यालयों में खुल रहे हिन्दी संकायों से यह साबित होता है कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी की स्वीकार्यता बढ़ी है तथा हिन्दी के महत्व को समझा जा रहा है। खास बात यह है कि जिन देशों के विश्वविद्यालयों में हिन्दी विभाग खुल रहे हैं, उनमें पढ़ाने वाले शिक्षक बाहर से नहीं बुलाए गए हैं, वे स्थानीय ही हैं। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर न सिर्फ पठन-पाठन के क्षेत्र में हिन्दी का दबदबा बढ़ा है, बल्कि इस भाषा को सीखने की ललक भी बढ़ी है। विभिन्न कारणों से विदेशी नागरिक हिन्दी की ओर उन्मुख हुए हैं।

चीन, जापान, अमेरिका, फ्रांस और ब्रिटेन जैसे देशों में हिन्दी सीखने वालों का प्रतिशत बढ़ा है। जहां ब्रिटेन में हिन्दी का अच्छा-खासा माहौल निर्मित हो रहा है, वहीं अमेरिका तो बकायदा अपने राष्ट्रवासियों से हिन्दी सीखने की अपील तक कर चुका है। हिन्दी वैश्विक स्वीकृति की तरफ अग्रसर

*असि. प्रोफेसर, राजनीतिशास्त्र, महाराणा प्रताप पी.जी. कालेज, जंगल धूसड़, गोरखपुर

**असि. प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग, महाराणा प्रताप पी.जी. कालेज, जंगल धूसड़, गोरखपुर

है। हिन्दी की इससे बड़ी सफलता और क्या होगी कि अंग्रेजी के विश्वस्तरीय शब्द कोशों में 'चटनी', 'इडली', 'छोला-भटूरा' और 'डोसा' जैसे शब्द स्थान पा चुके हैं। यह हिन्दी में आई तेजी का ही परिणाम है कि रसियन चैनल तक हिन्दी के रंग में रंगे दिख रहे हैं।

हिन्दी का यह विस्तार अकारण नहीं है। हिन्दी नितांत समृद्ध भाषा है। दुनिया की तमाम आधुनिक भाषाओं से कहीं अधिक श्रेष्ठ है यह भाषा। शब्दों का अतुल भंडार है हिन्दी के पास। मजबूत व्याकरण ने इसे तराशा है। हिन्दी नीरस नहीं, जीवंत भाषा है। यह सरल भी है और उदार भी है। हिन्दी की श्रीवृद्धि में संस्कृत का महत्वपूर्ण योगदान है। संस्कृत ने इसे समृद्ध बनाया। हिन्दी ने अपनी समृद्धि के लिए दूसरी भाषाओं से भी शब्द लिए, उन्हें आत्मसात किया और प्रचलन में लाकर प्रवाह दिया। अंग्रेजी, फारसी, अरबी, पुर्तगाली, फ्रांसीसी, चीनी, तुर्की तथा जापानी आदि भाषाओं के अनके शब्दों को हिन्दी ने अपनाया। इन भाषाओं के अनेक शब्द हिन्दी में घुल-मिल कर प्रचलन के प्रवाह में आ चुके हैं। जो लचक हिन्दी में है, वह विश्व की किसी अन्य भाषा में नहीं है। कुछ लोगों ने यह हौवा जरूर पैदा किया कि कम्प्यूटर की भाषा अंग्रेजी है, हिन्दी जानने वाले इससे कैसे ताल-मेल बैठाएंगे? यह एक भ्रामक बात है, जिसे प्रचरित कुछ ज्यादा ही किया गया। भारत में कम्प्यूटर की पहुंच को देखकर यह कहा जा सकता है कि हमारे यहां कम्प्यूटर क्रांति ने ही इस भ्रामक प्रचार को आईना दिखा दिया है।

आज हमारे यहां 'ई चौपालें' लग रही हैं। भारतीय मेधा ने हिन्दी के उपयोगी सॉफ्टवेयर विकसित कर लिए हैं। जो देवनागरी लिपि में हिन्दी नहीं लिख पाते, वे रोमन लिपि में हिन्दी का प्रयोग कर विचारों का आदान-प्रदान कर रहे हैं। सात समन्दर पार भी कम्प्यूटर पर हिन्दी किसी न किसी रूप में काबिज है। कार्यों का संचालन और प्रतिपादन भली-भांति हिन्दी में हो रहा है। सब कुछ बहुत सरलता से हो रहा है। कहीं कोई अवरोध नहीं है। हिन्दी का दायरा इंटरनेट के जरिये भी दिनों-दिन बढ़ रहा है। ब्लॉग, वेबसाइटों और सोशल मीडिया पर हिन्दी ने मजबूत पकड़ बनाई है। सच तो यह है कि नेट ने हिन्दी को नये आयाम दिए हैं। हिन्दी की ग्लोबल पहुंच बनाने में भी इंटरनेट का अप्रतिम योगदान है। यह माध्यम हिन्दी भाषियों को जोड़ने के लिए सेतु का काम कर रहा है। आज एक लाख से भी ज्यादा ब्लॉग हिन्दी में उपलब्ध हैं। 15 से अधिक खोज इंजन हिन्दी में उपलब्ध हैं। अनेक हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के संस्करण इंटरनेट पर उपलब्ध हैं। हिन्दी के उदीयमान लेखक-लेखिकाओं के लिए इंटरनेट 'लांचिग पैड' का काम कर रहा है। और तो और सात समंदर पार श्रीरामचरितमानस जैसी धार्मिक पुस्तकें इंटरनेट पर पढ़ी जा रही हैं।

हिन्दी की व्यापकता को देखते हुए यह कहना असंगत न होगा कि यह सम्पर्क भाषा बनने की ओर अग्रसर है। कई माध्यमों से इसने खुद को विस्तार दिया है। माध्यम चाहे बोलचाल का हो, व्यापार का हो या फिर मनोरंजन का, हिन्दी की चादर फैलती ही जा रही है।

पहले व्यापार को ही लें। जो बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ कल तक हिन्दी से दुराव करती थीं, आज उन्हें यह इल्म हो चुका है कि हिन्दी के बगैर बाजार के समीकरण गढ़बड़ा सकते हैं। ये कंपनियां हिन्दी की तरफ उन्मुख हैं। प्रचार-प्रसार का माध्यम हिन्दी को बना रही हैं। विज्ञापन हिन्दी में छपवा रही हैं और अपने यहां हिन्दी जानने वालों को सम्मान दे रही हैं। अपने ब्रांड को अखिल भारतीय बनाने के लिए मल्टीनेशनल कंपनियां हिन्दी की शरण में हैं। इस तरह संवाद के नये रास्ते तो खुल ही रहे हैं, अंतर्राष्ट्रीय बाजार पर हिन्दी का वर्चस्व भी बढ़ रहा है। यह वर्चस्व भाषा की समृद्धि से जुड़ रहा है। हिन्दी की सम्प्रेषणीयता बढ़ रही है। एक ऐसा प्रवाह हिन्दी में दिख रहा है, जो अभूतपूर्व है। एक नये कलेवर में हिन्दी विश्व स्तर पर आकार ले रही है। कारपोरेट जगत को यह समझ में आ चुका है कि अगर गांव-गांव तक पहुंच बनानी है, तो हिन्दी को अपनाना ही होगा।

मीडिया ने भी हिन्दी की ग्लोबल पहुंच बनाने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी है, खासतौर पर इलेक्ट्रानिक मीडिया ने। इसके पीछे मुख्य कारण यह कि कि भारतीय मूल के या यूं कहें कि हिन्दी भाषी संस्कारों के लोग दुनिया के हर मुल्क में पहंच चुके हैं। वे इन मुल्कों में प्रवास कर रहे हैं। उन्हें विदेश में रहकर भी खबरें हिन्दी में ही सुनना अच्छा लगता है। वे वहां रहकर हिन्दी न सिर्फ सुनते है, बल्कि लिखते-पढ़ते भी हैं। हिन्दी की अनेक साहित्यिक पत्र-पत्रिकाएं विदेशों में प्रकाशित हो रही है। अनेक संस्थाएं हिन्दी के उन्नयन को लेकर सक्रिय हैं। माहौल हिन्दीमय बन रहा है।

यह कहना भी गलत न होगा कि विश्व स्तर पर मनोरंजन ने हिन्दी को इसके अभीष्ट आयामों में प्रतिष्ठापित किया है। माध्यम चाहे हिन्दी सिनेमा हो, टीवी चैनल हों या मंचीय कार्यक्रम, हिन्दी ने मजबूती से पांव जमाए हैं। हिन्दी सिनेमा का आंतरिक परिदृश्य चाहे जैसा हो, मगर विश्व मंच पर हिन्दी को स्थापित करने में इसके योगदान को नकारा नहीं जा सकता। हिन्दी सिनेमा को अंतर्राष्ट्रीय पहचान मिल चुकी है। टीवी चैनलों पर प्रसारित हिन्दी के मनोरंजक कार्यक्रम विदेशों में खासे लोकप्रिय हो रहे हैं। इन्हे पूरे चाव से देखा जा रहा है। इसके अलावा मुशायरों-कवि सम्मेलनों का जादू भी विदेशों में बरकरार है। इनमें हिन्दी जानने वाले उत्साहपूर्वक सम्मिलित होते हैं। प्रवासी भारतीय हिन्दी कवियों को बराबर अपने यहाँ आमंत्रि करते हैं। भारतीय कलाकार विदेशों में बढ़-चढ़ कर 'स्टेज शो' कर रहे हैं। इनमें हिन्दी का ही बोलबाला है। कुल मिलाकर, एक उत्साहजनक वातावरण हिन्दी को लेकर बन रहा है। हिन्दी ग्लोबल संवाद के नये आयाम बना रही है। अब दुनिया के माथे पर हिन्दी दमक रही है। विश्व फलक पर हिन्दी ने अंग्रजी को पीछे ढकेल दिया है। टोक्यो विश्वविद्यालय के प्रो. होजुमितनाका ने एक अध्ययन के बाद यह निष्कर्ष दिया है कि विश्व में चीनी के बाद सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषा के रूप में हिन्दी सामने आई है। अंग्रेजी तीसरे स्थान पर चली गई है। दुनिया के 50 से अधिक देशों में तकरीबन 500 केंद्र पर हिन्दी पढ़ाई जा रही है।

ब्रिटेन की यूके हिन्दी समिति भी वहां हिन्दी की अलख जगाए है। वहां करीब एक दर्जन ऐसी संस्थाएं हैं, जो नियमित रूप से हिन्दी के प्रचार-प्रसार में संलग्न है। खाड़ी के मुल्कों में भी हिन्दी को लेकर चेतना बढ़ी है और धीरे-धीरे यहां हिन्दी सामान्य बोलचाल की भाषा बन रही है। पड़ोसी देश श्रीलंका, मारीशस, त्रिनिदाद एंड टोबैगो, सूरीनाम, फिजी और नीदरलैंड में भी हिन्दी का दबदबा बढ़ा है। जिस तरह से आज हिन्दी विश्व फलक पर विस्तारित हो रही है, उससे यही ध्वनित हो रहा है कि इस भाषा ने ग्लोबल भाषा बनने की सक्षमता हासिल कर ली है। कल तक जो लोग राष्ट्रीय भाषा के संदर्भ में हिन्दी को लेकर चिंतित रहते थे, अब उन्हें चिंता करने की कोई जरूरत नहीं, क्योंकि हिन्दी अंतर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में सशक्त होकर उभर रही है। इसकी ग्राह्यता अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बढ़ी है। इसका स्वरूप निखरा है। वैश्विक हितों को देखते हुए यह एक शुभ संकेत है। विदेशों में अनेक ऐसे लोग हिन्दी के पक्षधर बन रहे हैं, जो भारतीय मूल के नहीं हैं। ऐसे समर्पित हिन्दी विद्वानों की बदौलत भी हिन्दी अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर परवान चढ़ रही है। अब अमेरिका के डॉ. हर्मन बॉन को ही ले लीजिए। पिछले चार दशकों से भी ज्यादा समय से वह अमेरिका के टेक्सास विश्वविद्यालय में हिन्दी पढ़ा रहे हैं। हिन्दी साहित्य की अनेक विधाओं पर शोध भी कर चुके हैं। हिन्दी से उन्हें बेहद लगाव है। समर्पित भाव से वह हिन्दी की सेवा में रत हैं। विदेशी मूल के ऐसे अनेक विद्वान हिन्दी को हृदयांगम कर रहे हैं। विदेशों में हिन्दी पर महत्वपूर्ण कार्य हो रहा है, खासियत यह है कि वहीं के लोग इस काम को अंजाम दे रहे हैं। विदेशी भाषा वैज्ञानिकों का ध्यान हिन्दी पर केन्द्रित हुआ है। डच के भाषाविद् केटलर ने हिन्दी व्याकरण पर महत्वपूर्ण कार्य किया। अंग्रेजी के विद्वान ग्रियर्सन ने हिन्दी सहित अन्य भारतीय भाषाओं पर महत्वपूर्ण शोधपरक कार्य किया है। इन गतिविधियों से जहां विश्व फलक पर हिन्दी की पताका ऊंची हुई है, वहीं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी का भविष्य भी उज्जवल दिख रहा है।

अभी अमेरिका में हिन्दी की पढ़ाई सिर्फ विश्वविद्यालय स्तर पर हो रही है, आने वाले दिनों में हाईस्कूल के स्तर पर भी इसे पढ़ाने पर विचार किया जा रहा है। यूएसए हिन्दी समिति इस दिशा में प्रयासरत है। अमेरिकी छात्रों का रुझान भी हिन्दी की तरु बढ़ रहा है। इसे देखते हुए वहां हिन्दी शिक्षकों की संख्या बढ़ाई जा रही है। संयुक्त राष्ट्र में भी हिन्दी को लाने की कोशिशें जारी हैं। यह सब अत्यंत सुखद है।

हिन्दी का अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बढ़ता दबदबा उन लोगों के लिए काबिल-ए-गौर हो सकता है, जो इससे विमुख हैं। बेहतर होगा कि अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में भारतीय प्रतिनिधि, राजनयिक, नेता और नौकरशाह हिन्दी का इस्तेमाल करें और भाषा को लेकर आत्महीनता की ग्रंथियां मन में न पालें। उन्हें यह समझना होगा कि हिन्दी को वैश्विक पहचान मिल चुकी है। अतएव उन्हें अपने आचरण से इस पहचान को और मजबूती देनी होगी, ताकि कोई यह न कह सके कि आप हिन्दी के लिए

अंतर्राष्ट्रीय मान्यता की बात तो करते हैं, मगर खुद उससे परहेज क्यों करते हैं।

रामविलास शर्मा जी के शब्दों में कहें तो इस (सांस्कृतिक) विकास के लिए सबसे पहले सांस्कृतिक और राजनीतिक कार्यों में भारतीय भाषाओं का व्यवहार होना चाहिए। भारत में अनेक शिक्षा आयोग गठित किये गये। उन सबने कहा कि शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषाएं होनी चाहिए, परन्तु विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा का माध्यम अभी तक अंग्रेजी बनी हुई है। विद्वान अपने अखिल भारतीय सम्मेलन करते हैं तो वहां भाषण अंग्रेजी में करते हैं। उनके शोधपत्र अंग्रेजी पत्रिकाओं में प्रकाशित होते हैं। यदि उनके निबंध विदेशी पत्रिकाओं में प्रकाशित हों तो वे और भी सम्मानित समझे जाते हैं। लोग लाखों रूपये खर्च करके विश्व सम्मेलन आयोजित करते हैं, वहां हिन्दी को विश्व भाषा बनाने का बीड़ा उठाते हैं। यदि वे केवल दिल्ली विश्वविद्यालय में हिन्दी को शिक्षा का माध्यम बना दें तो हिन्दी भारत की 'वास्तविक' राष्ट्रभाषा और विश्वभाषा भी बन जायेगी। अंग्रेजी एवं अंग्रेजीयत पर राष्ट्रपिता की यह उद्धरण उल्लेखनीय हैं कि ''दुनिया से कह दो – गांधी अंग्रेजी नहीं जानता ..... सारे संसार में भारत ही एक अभागा देश है जहां सारा कारोबार एक विदेशी भाषा में होता है! ..... तो आइए संकल्प लें, कि हम सब हिन्दी में अपना अधिकतम कार्य करेंगे! .... स्वदेश, स्वराज्य और स्वभाषा का सम्मान रखेंगे!''

अत: विश्व भाषा बनने से पहले हिन्दी को अपने देश में ही सही मुकाम तक पहुंचना होगा। उपर्युक्त दोनो में मनीषीयों में समानता यह है कि वे प्रथमत: साम्राज्यवादी प्रभुत्व और विस्तार के खिलाफ हिन्दी भाषा को एक राष्ट्रवादी हथियार के रूप में देखा। क्योंकि उनकी मान्यता थी कि इसी से सच्ची आजादी हासिल हो सकती हैं।

सामाजिक-सांस्कृतिक संवेदना और हिन्दी पत्रकारिता

अजय कुमार सिंह* एवं प्रदीप कुमार राव**

हिन्दी पत्रकारिता का एक स्वर्णिम इतिहास रहा है। इसके आरम्भ से वर्तमान स्वरूप में आने तक की एक लम्बी संघर्षगाथा है। 192 वर्षों के इतिहास में इसने बड़ी महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ अर्जित की हैं। उसी अनुपात में आलोचनाएँ भी। लेकिन यह क्षेत्र या पेशा आज जितनी चर्चा में है उतना शायद पहले कभी नहीं रहा। खास बात यह है कि अभी तक पत्रकारिता में हर क्षेत्र की चर्चा होती थी, अब हर क्षेत्र में पत्रकारिता की चर्चा हो रही है। सम्पादक, पत्रकार, टीवी एंकर किसी सेलीब्रेटी की तरह हो गये हैं। महानगरों में टीवी एंकरों के बड़े-बड़े होर्डिंग लग रहे हैं। ब्राण्डिंग हो रही है। यह बड़ा बदलाव है। अभावों में पली-बढ़ी पत्रकारिता में टीवी माध्यम के विस्तार के बाद सिनेमा की तरह ग्लैमर पैदा हुआ और अब यह बढ़ता ही चला जा रहा है। यह सही है कि धूप, गर्मी, बारिश में दौड़-धूपकर समाचार संकलन करने वाले पत्रकारों-छायाकारों की आर्थिक दशा अब भी बहुत बेहतर नहीं हुई है लेकिन इस क्षेत्र में मोटी तनख्वाहें या मुनाफे में हिस्सेदारी पाने वाला एक वर्ग भी विकसित हुआ है जो धीरे-धीरे सेलीब्रेटीज की तरह पहचाना जाने लगा है। पत्रकारिता के ये चेहरे सोशल मीडिया से लेकर आम लोगों की चर्चाओं तक में शामिल हो रहे हैं। कल तक जिनका काम दूसरों से जुड़े समाचार जुटाना ही था वे आज खुद समाचार बनने लगे हैं। पत्रकारिता की इन सेलीब्रेटीज का सब कुछ सार्वजनिक हो रहा है - उनका प्रस्तुतीकरण, उनकी प्रतिबद्धताएँ, उनकी ईमानदारी-बेईमानी और उनकी निजी जिन्दगी तक।

यह एक संक्रमण का दौर है जिसमें हर क्षेत्र की तरह पत्रकारिता में भी काफी कुछ बदल रहा है। अंग्रेजों की दासता के समय भारत में सामाजिक और राजनीतिक चेतना की अलख जगाने वाली पत्रकारिता को मिशन से प्रोफेशन बने काफी समय गुजर चुका है और अब यदि हम इसे सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से संवेदनशील बनाये रखना चाहते हैं तो यह किसी नैतिक दबाव से नहीं पेशेवर तकाजों के प्रति सतर्कता बढ़ाने से ही हो सकता है। वास्तव में देखा जाये तो आज की तारीख में सचेत और संवेदनशील समाज बनाने का एजेण्डा न प्रिण्ट मीडिया के पास है और

*वरिष्ठ पत्रकार, गोरखपुर

**प्राचार्य, महाराणा प्रताप पी.जी. कॉलेज, जंगल धूसड़, गोरखपुर

न इलेक्ट्रॉनिक के पास। अखबार और टीवी दोनों सांस्कृतिक गतिविधियों की बजाय खाये-पीये-अघाये लोगों की जीवन-शैली को ही ग्लैमराइज करने में लगे हुए हैं। सांस्कृतिक गतिविधियों की कवरेज कहीं से प्राथमिकता में नहीं है। बहुत से उदाहरण हैं, जैसे- हमारे कुशीनगर में ही एक गाँव है-जोगिया कला। देवरिया के भाटपार रानी क्षेत्र का गाँव 'बनकटा मिश्र' भी है। इन दोनों गाँवों ने एक पहल की है ग्रामीण जीवन को आधार-बिन्दु बनाकर पूरे गाँव को कला की विविध शाखाओं से जोड़ने की। गाँवों में एक अद्‌भुत दृश्य बनता है। पूरा गाँव, स्त्री-पुरुष-बच्चे, सबने मिलकर एक उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया लेकिन कभी भी इन गाँवों के ऐसे आयोजन अखबारों-चैनलों की सुर्खियाँ नहीं बने। गोरखपुर के अखबारों में बड़ी सपाट और निर्जीव रिपोर्ट्स यदा-कदा छपती हैं जो ऐसे आयोजनों की सूचना भर देती हैं। उनके पीछे के समर्पण, परिश्रम और सोच को प्रदर्शित नहीं करतीं। 'संस्कार भारती', 'रंगाश्रम' सहित अनेक संस्थाओं के कार्यक्रम भी होते रहते हैं लेकिन उन्हें भी कभी इस ढंग से कवर नहीं किया जाता कि कार्यक्रम का लक्ष्य स्पष्ट हो सके और लोग सांस्कृतिक रूप से सचेत बनें। होता यह है कि कार्यक्रम से एक दिन पहले या उसी दिन अखबारों के किसी कोने में सूचना छपती है, आयोजकों द्वारा यांत्रिक ढंग से प्रेस-विज्ञप्तियाँ तैयार की जाती हैं और उसी यांत्रिक तरीके से रिपोर्टर और फोटोग्राफर अपनी रिपोर्ट और फोटो दे देते हैं। फिर अगले दिन सुबह एक निर्जीव-सी खबर अखबार की कुछ जगह घेरे दिखती तो है लेकिन किसी का ध्यान नहीं खींच पाती। जाहिर है, नीरस प्रस्तुतीकरण की वजह से ऐसी खबरों की कोई पठनीयता नहीं होती। पाठक सरसरी नजर से देखता तो है लेकिन आयोजन के बारे में कुछ जान-समझ नहीं पाता। सांस्कृतिक गतिविधियों को लेकर पत्रकारिता की ऐसी उदासीनता रंगकर्मियों, शिल्पकारों और सृजनकर्ताओं की पूरी धारा से सामान्य जन को काट रही है; कला और संस्कृति को कुछ गिने-चुने लोगों का उद्यम बताकर खारिज कर रही है। फलस्वरूप, उन गिने-चुने किन्तु पूरी निष्ठा और ईमानदारी से मनुष्यता की सेवा कर रहे संस्कृतिकर्मियों को निराश कर रही है। यह पत्रकारिता की सांस्कृतिक असंवेदनशीलता का एक पहलू है। हर शहर में थोड़ी-बहुत संख्या में रहने वाले अलग-अलग समुदायों मसलन सिख समाज, ईसाई समाज, यहूदी, बंगाली, मारवाड़ी, सिन्धी, दक्षिण भारतीय, कश्मीरी, उत्तराखण्डी, पंजाबी और इस तरह की तमाम सांस्कृतिक धाराओं की गतिविधियों से भी पत्रकारिता अब तक अंजान या फिर जान-बूझकर दूरी बनाये हुए है। उदाहरण के लिए, गोरखपुर में ही बंगाली, सिख, मारवाड़ी और उत्तराखण्डी समाज के लोग एक-दूसरे के साथ मिलकर हर हफ्ते - दस दिन पर कुछ-न-कुछ कार्यक्रम करते हैं। एक-दूसरे के सुख-दुःख में भागीदार होते हैं। यह उनकी कोशिश है अपनी सांस्कृतिक विरासत को कायम रखने की। ऐसे ही भोजपुरिया संस्कृति के लोग जहाँ-जहाँ हैं, वहाँ-वहाँ एक समूह के रूप में नजर आते हैं। लेकिन उनकी सांस्कृतिक गतिविधियाँ जब तक बाजार से नहीं जुड़तीं तब तक मीडिया का ध्यान नहीं जाता। मसलन, आज छठ पर्व पर दिल्ली से मुम्बई तक धूम दिखाई देती है। यह अच्छा है लेकिन इसी

समाज के साथ भाषा और संस्कृति को लेकर महानगरों में जिस तरह का भेद-भाव किया जाता है उसके प्रति मीडिया कभी मुखर रूप से अपनी संवेदना जाहिर नहीं करता। उसके कैमरे उधर ही घूमते हैं जिधर टीआरपी है। मतलब कोई भाषा-संस्कृति के नाम पर नफरत फैला रहा है तो उसे हीरो के रूप में पेश करके टीआरपी बटोरी जायेगी लेकिन कोई ट्रेनों की छतों और जनरल डिब्बों में ठुँसकर सदियों की उपेक्षा का दंश भोगते हुए पूरे परिवार के साथ दो जून की रोजी-रोटी कमाने निकला है तो उसे सिर्फ पिटता हुआ दिखाकर अपने कर्तव्यों की इतिश्री कर ली जायेगी। कभी यह नहीं बताया जायेगा कि परदेस में अपनी संस्कृति को बचाये रखते हुए मेहनत के बल पर पहचान बनाने के पीछे उनका कितना बड़ा संघर्ष और समर्पण है।

ऐसे मामलों में मीडिया की रिपोर्टिंग उतनी संवेदनशील कतई नहीं है जितनी होनी चाहिए। बीच-बीच में संवेदना जगाने वाली छिटपुट रिपोर्टिंग जरूर दिखती है लेकिन प्रायः रोज होने वाली ऐसी घटनाओं को अपेक्षित जगह नहीं मिल रही है। नतीजतन, समाज में अपेक्षित बदलाव भी नहीं दिख रहा। जरूरी है कि सभी अखबार, टीवी चैनल और वेबसाइटें अपने कोर इश्यूज में इसे शामिल करें और सांस्कृतिक रूप से अधिक संवेदनशील बनें। सोशल मीडिया में तमाम खराब चीजों के बीच जरूर इसे कुछ जगह मिल रही है लेकिन वह बहुत सीमित है।

पत्रकारिता में सामाजिक संवेदना का भी नितान्त अभाव दिख रहा है। दुर्भाग्य से जैसे-तैसे व्यावसायिकता बढ़ रही है वैसे-वैसे यह अभाव और गहरा होता चला जा रहा है। असल में मीडिया के एक बड़े हिस्से ने सामाजिक संवेदना का सिर्फ चोला ओढ़ रखा है। वास्तव में वे संवेदित हैं नहीं। इसके उदाहरण अखबारों-टीवी चैनलों की खबरों में रोज दिखते हैं। कुछ चैनल बोरवेल में गिरे प्रिंस को बचाने जैसे अभियानों को 24 से 48 घण्टे लाइव कवरेज देकर अपनी संवेदनशीलता साबित करने की कोशिश करते रहते हैं। असल में यह उनकी संवेदनशीलता नहीं टीआरपी की होड़ भर है। किसी भी घटना को सनसनीखेज अन्दाज में पेश करके दर्शकों और पाठकों का ध्यान खींच लेने को अच्छा तमाशा तो कहा जा सकता है जिम्मेदार पत्रकारिता नहीं। बाजार में आगे निकल जाने की होड़ ने ऐसा अन्धा कर दिया है कि आम लोगों के लिए सच और झूठ का फैसला करना तक मुश्किल हो जाये। सामाजिक असंवेदनशीलता का इससे बड़ा उदाहरण क्या होगा कि दुष्कर्म जैसे मामलों में पीड़ित की पहचान छिपाने के सामान्य नियम तक का पालन नहीं हो रहा। मासूम बच्ची के साथ निर्ममता के विवरणों को इस ढंग मे पेश किया जा रहा जिससे अपराध के प्रति गुस्से मे ज्यादा कुत्सित मानसिकता वालों की जिज्ञासाएँ शान्त हों। समाचार संकलन और प्रसारण जैसे पवित्र पेशे के नाम पर हमारे अखबार, चैनल और वेबसाइटें जो कुछ कर रही हैं वो अपने आप में बहुत घिनौना और चिन्तनीय है।

क्या वजह है कि 26/11 मुम्बई हमले और पठानकोट हमले के वक्त एक तरफ हमारे जवान

जान पर खेलकर आतंकवादियों पर काबू पाने की कोशिश में लगे थे तो दूसरी तरफ हमारे चैनल खुद को ज्यादा साहसी और रोमांचकारी बताने के चक्कर में दुश्मनों की मदद करने वाली लाइव तस्वीरें दिखा रहे थे। चौबीसों घण्टे नैतिकता और संवेदनशीलता का ढिंढोरा पीटते हुए सब पर सवाल उठाने वाले मीडिया संस्थानों की संवेदनशीलता उस वक्त कहाँ गायब हो जाती है जब किसी पेंशनर या इलाज कराने के लिए बैंक से रुपये लेकर जा रहे मरीज के साथ लूट की घटना होती है। उसकी खबर महज इसलिए छोटी सी छापी जाती हे या छापी ही नहीं जाती कि लूट की रकम बहुत छोटी थी। वहीं, यदि यही लूट किसी बड़े व्यापारी के साथ बड़ी रकम की होती है तो फ्रण्ट पेज की सुर्खियाँ बनती हैं। आजकल तो अपराध की खबर कौन से पन्ने पर कितनी बड़ी छपेगी या चैनल के किस टाइम स्लॉट में कितनी देर और कितनी बार दिखाई जायेगी यह भी इस बात पर निर्भर करता है कि अपराध का शिकार कौन था। न्यूज रूम की बैठकों में पीड़ित के प्रोफाइल पर जिस निर्लज्जता से चर्चा होती है क्या संवेदना का चोला ओढ़ा मीडिया कभी उसे सार्वजनिक कर सकता है? सामाजिक असंवेदनशीलता और मुनाफाखोरी विज्ञापनों-खबरों के बिगड़ते अनुपात के रूप में हम सब झेल ही रहे हैं। यह कौन तय करेगा कि मूल्य चुकाकर प्रिण्ट या इलेक्ट्रॉनिक मीडिया से जुड़ने वाले पाठक-दर्शक खबरों के साथ कितने विज्ञापन देखने, सुनने, पढ़ने को मजबूर होंगे? और विज्ञापन भी कैसे-कैसे? किसी अखबार का क्लासीफाइड का पन्ना खोल लें और एक नजर विज्ञापनों की भाषा-शैली पर डालें। क्या कोई परिवार में बैठकर ऐसे विज्ञापनों का वाचन कर सकता है? मनोरंजन, सेहत और सेक्स शिक्षा के नाम पर रोज परोसे जाने वाले ये विज्ञापन दरअसल अनैतिकता की विष-बेल को सींच रहे हैं जो बड़ी तेजी से हमारे समाज पर अपनी जकड़न बढ़ाती जा रही है।

पत्रकारिता की सामाजिक संवेदना की राह में एक और बाधा है। उसके वास्तविक दायरे के सिमटते चले जाने की। वास्तव में हर मीडिया संस्थान अपनी व्यापक पहुँच की बात तो करता है लेकिन अन्दर-ही-अन्दर उसका दायरा बेहद संकुचित होता चला जा रहा है। मीडिया संस्थानों के दरवाजे सबके लिए खुले नहीं हैं। यह सोचने का विषय है कि जनता की आवाज उठाने के नाम पर बने इन संस्थानों ने अपने दरवाजों पर इतने पहरे क्यों बिठा रखे हैं कि आम गरीब लोग उनके पास जाने की हिम्मत ही नहीं जुटा पाते। ये दरवाजे समर्थ लोगों के लिए हमेशा खुले हैं। हर संस्थान और उससे जुड़े अधिकारियों-कर्मचारियों की अपनी फ्रेण्ड लिस्ट है। लेकिन वह इतनी बड़ी नहीं कि सामान्य जन की दोस्ती उन्हें हासिल हो जाए। चन्द चेहरे हैं जो संस्थानों के इवेंट्स से लेकर अखबार के पन्नों और पैनल चर्चाओं तक में नजर आते हैं। वही चेहरे बार-बार दिखाये जाते हैं। हर विषय पर उन्हीं की प्रतिक्रियाएँ ली जाती हैं। मानो समाज के सभी वर्गों के सच्चे प्रतिनिधि वही हों। दुर्भाग्य से मीडिया की फ्रेण्ड लिस्ट में शामिल यह सीमित वर्ग भी धीरे-धीरे स्वयं पर अहंकार की खोल चढ़ाकर सामान्य जन से दूर हो जाता है। फिर कहीं से भी नये विचार नहीं आते। सारी खिड़कियाँ और रोशनदान तक बन्द हैं। घुटन तो होनी है। हर जगह एक ठहराव-सा दिखता है। या फिर संवेदनाओं

का मजाक उड़ाते चेहरे। ऐसे ही लोग चन्द पैसों से फल-मिठाइयाँ खरीदकर कुष्ठ रोगियों, बाढ़ पीड़ितों या गरीब बस्तियों में बाँटते और उन मुरझाये चेहरों के साथ अपनी मुस्कराती हुई फोटो अखबारों में प्रमुखता से छपवा ले जाते हैं। जबकि ऐसी फोटो उस गरीबी और मजबूरी का मजाक उड़ाती सी लगती है। यह एक सामाजिक अपराध है। ऐसे लोग मीडिया की चर्चाओं में नजर आते हैं जिनमें ज्यादातर बातें काफी पहले अर्जित किये गये ज्ञान के आधार पर होती हैं। जबकि हमारे आस-पास की दुनिया और इस दुनिया का सच हर क्षण बदलता चला जा रहा है। लिहाजा यह कहना गलत नहीं होगा कि सबकी खबर रखने का दावा करने वाली पत्रकारिता को दरअसल बहुत से मामलों में खुद के बेखबर होने की खबर ही नहीं होती और अधूरी सूचनाओं-जानकारियों के दम पर वह किसी एक बात को ऊब पैदा करने की हद तक खींचती जाती है। यह सारी स्थितियाँ इस बात का संकेत दे रही हैं कि पत्रकारिता अपने दौर के सच से काफी कुछ कटी हुई है। उसने अपने लिए एक अलग ही दुनिया बना ली है जिसका सामान्य जन के समाज से बहुत सीमित सरोकार रह गया है। इस वजह से सामान्य जन के दुःख-दर्द, तकलीफें, उनकी रोजमर्रा की कठिनाइयाँ सिरे से गायब हैं। उनकी जगह छोटे-छोटे मुद्दे उठाकर इम्पैक्ट दिखाने और खुद की संवेदनशीलता, सक्षमता और खबर का असर साबित करने की होड़ मची है।

सांस्कृतिक और सामाजिक संवेदना से पत्रकारिता के कटने का एक सबसे बड़ा कारण इस पर बाजार के प्रभाव के रूप में नजर आता है। यह सही है कि समय के साथ मिशन को प्रोफेशन बनना ही था और वो बन गया। इसमें कोई बुराई नहीं है। लेकिन इस प्रोफेशन को बिना किसी प्रशिक्षण, मूल निर्धारण और जवाबदेही-जिम्मेदारी के चलाना तो किसी बाध्यता का अंग नहीं है। सम्पादक नाम की संस्था को कमजोर किया जाना इस गैरजवाबदेही भरे माहौल की शुरुआत भर थी। आज बहुत से संस्थानों में यह खुली सच्चाई है कि सम्पादकीय विभाग के लोग, विज्ञापन विभाग के लोगों से निर्देश लेने को मजबूर होते हैं। सच की राह में संस्थानों का व्यावसायिक हित कदम-कदम पर आड़े आता है और जब सच या व्यवसाय में से चुनने की बारी आती है तो ज्यादातर बार व्यवसाय चुना जाता है। रात 12 बजे भी आये विज्ञापन कई समाचारों की हत्या कर छापे जाते हैं। ऐसे में मीडिया संस्थानों की सबसे कमजोर कड़ी यदि कोई है तो वह संवाददाता और छायाकार है जिसकी सेवाओं की कोई गारण्टी नहीं। वह बेहद मामूली पारिश्रमिक पर सुबह से शाम तक निर्देशों का पालन करते हुए प्रबन्धन द्वारा निर्धारित लक्ष्यों को पूरा करने में जुटा रहता है। वास्तव में अच्छी पत्रकारिता के लिए इसी वर्क फोर्स को सबसे सशक्त और सक्षम होना चाहिए था लेकिन मुनाफे की चिन्ता ने जान-बूझकर ऐसा होने नहीं दिया। स्ट्रिंगर, रिपोर्टर और छायाकारों के वेतन पर सबसे कम खर्च करने वाले संस्थान जब अपने लोगों को लेकर ही संवेदनशील नहीं है तो समाज और संस्कृति के प्रति कितने संवेदनशील हो सकते हैं। इस स्थिति पर बहुत आश्चर्य इसलिए भी नहीं होता क्योंकि मीडिया संस्थानों में पूँजी लगाने वाले ज्यादातर घरानों की कोई सामाजिक-सांस्कृतिक प्रतिबद्धता तो

होती नहीं। उन्हें रेवेन्यू के अपने लक्ष्य पूरे करने हैं। निचले स्तर पर यदि उनका काम गैर-प्रशिक्षित कम वेतन लेने वालों से चल जाता है तो वे क्यों अधिक खर्च करना चाहेंगे। कम पूँजी में अधिकतम उत्पादन प्राप्त करके आशातीत व्यावसायिक लक्ष्यों को हासिल करने का सिद्धान्त खूब फल-फूल रहा है। ऐसे में संवेदनाओं की बात उतनी ही सच है जितने का बाजार, टीआरपी या रीडरशिप से सरोकार हो।

कुल मिलाकर 30 मई, 1826 को पण्डित जुगुल किशोर शुक्ल के सम्पादकत्व में 'उदन्त मार्तण्ड' से शुरू हुई हिन्दी पत्रकारिता ने 192 वर्षों के अन्तराल में इतने उतार-चढ़ाव देख लिये हैं कि अब एक परिपक्व पेशे के तौर पर इसके उभरने की अपेक्षा की जा सकती है। लेकिन यह तभी होगा जब पत्रकारिता भी विज्ञान और कला के अन्य विषयों की तरह स्वयं के प्रामाणिक सिद्धान्त विकसित करे। 'आकाश के नीचे सब कुछ' से आगे बढ़कर विषय की अलग-अलग शाखाएँ बनें और निचले स्तर पर काम करने वालों में उनकी समझ बढ़ायी जाय। बच्चों, महिलाओं, बुजुर्गों, अलग-अलग समुदायों और सम्प्रदायों को प्रभावित करने वाले संवेदनशील मुद्दों पर सीधे संवाद संकलन करने वालों को प्रशिक्षण दिया जाये। इस पेशे की वर्कफोर्स अपनी आजीविका पर चौबीसों घण्टे मँडराते रहने वाले खतरे की चिन्ता से मुक्त हो। उसे बुनियादी आर्थिक, सामाजिक सुरक्षा मुहैया करायी जाय। मीडिया संस्थान प्रभुत्व दिखाने वाले ताम-झाम पर किये जाने वाले अनाप-शनाप खर्च में कटौती करके इन बुनियादी बातों पर ध्यान दें तभी सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से संवेदनशील पत्रकारिता और उसके जरिये एक सुन्दर संसार के निर्माण की उम्मीद की जा सकती है।

आधुनिकता और लोक संस्कृति

सिद्धार्थ शंकर*

अपनी काल-आबद्ध मूल्यवत्ता के बावजूद आधुनिकता मूलतः एक परिवर्तनकारी परियोजना है। लेकिन ध्यान रहे कि यह परिवर्तन कोई सामान्य परिवर्तन नहीं है। आधुनिकता द्वारा संचालित परिवर्तन मूलगामी होता है। इसने पूरी दुनिया को बदल डाला। इससे सिर्फ दुनिया के नक्शे ही नहीं बदले; बल्कि इतिहास, स्मृति, राजनीति, समाज और संस्कृति में भी संरचनात्मक बदलाव आये। आधुनिकता के कारण भारत जैसा पारम्परिक समाज भी बदला। यहाँ की लोकसंस्कृति तथा उसकी परम्पराओं में बदलाव आया। ध्यातव्य है कि औपनिवेशिक आधुनिकता के आगमन से पहले भारतीय जनचेतना के नियन्ता शास्त्र और लोक ही थे। औपनिवेशिक आधुनिकता के प्राच्यवादी (ओरिएण्टल) अभियान के लिए यहाँ के शास्त्र और लोक दोनों कच्चा माल अथवा संसाधन थे। उसी के निमित्त अंग्रेजों ने इसका उपयोग भी किया। कहा भी जाता है कि प्राच्यवाद पश्चिम का ज्ञानात्मक मोर्चा या अभियान था।

सामान्यतः लोक एक समग्र सामाजिक और सांस्कृतिक अर्थ का संवहन करता है। इसमें सभ्यता और संस्कृति निरन्तर प्रवहमान स्थिति में रहती है। इसीलिए 'लोक' कोई स्थिर प्रत्यय नहीं है। यह सभ्यता के 'आधुनिक' घेरे से दूर का समाज और उसकी जीवन-शैली है। लोक स्वयं को रचता चला जाता है और अपनी आन्तरिक और बाह्य प्रक्रियाओं को परम्परित करता है। प्रवासन और प्रव्रजन के क्रम में इसका स्वरूप बदलता है, लेकिन इसकी मूल पहचान अथवा अन्तरात्मा बनी रहती है। और यही पहचान उस संस्कृति या क्षेत्र विशेष की पहचान का जरिया होता है।

लोकसंस्कृतियों की परम्पराओं के प्राचीन से नवीन बनने की प्रक्रिया में बहुत कुछ बदलता है। एरिक हाब्सबाम के अनुसार जिन परम्पराओं को हम बहुत प्राचीन समझते हैं और उनके लिए दीर्घावधि प्रयोग की स्वीकृति मिली हुई समझते हैं, वे अपेक्षाकृत नयी होती हैं। इसके पीछे लोक-परम्पराओं और रीतियों के पुनरान्वेष की दृष्टि होती है।[1] लोकसंस्कृति में निहित परिवर्तन के

*हिन्दी विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार), 841301

तत्त्वों और प्रवृत्तियों को इस 'घुघुआमन्ना' लोकगीत के जरिए भी समझा जा सकता है:

'घुघुआ मन्ना, उपजे धन्ना
पतवा उधियाइल जाये,
बिलायी मूस चभले जाये,
नया भीत उठे, पुरान भीत गिरे,'[२]

पुरानी भीत के गिरने तथा नयी भीत के उठने का यह रूपक बहुत अर्थपूर्ण है। यह नयी पीढ़ी एवं पुरानी पीढ़ी के सन्दर्भ में जितना सही है, उतना ही यह लोकजीवन में व्याप्त परम्पराओं एवं प्रचलनों तथा आधुनिक प्रगति के बारे में भी सही है। इस बात को कई संवेदनशील जगहों पर महसूस किया जाता रहा है कि लोक के तत्त्वों का विलोपन हो रहा है। उनका स्थान आधुनिक मूल्यबोध ले रहे हैं। और यह सही है कि पुरातन के ध्वंस पर ही नया निर्माण होता है। यही शाश्वत नियम है। हम सब 'द्रुत झरो जगत् के जीर्ण-पत्र' के हामी हैं। लेकिन कभी-कभी नयी भीतों का उठना और पुरानी भीतों का गिरना उतना आसान नहीं होता, और अगर गौर से देखा जाय तो उतना युक्तिसंगत भी नहीं होता। इसे देखने और पहचानने की दृष्टि आज लुप्त होती जा रही है। नेट की अप्रतिहत तरंगों में दोलायमान दुनिया में कितने लोग हैं जो समाप्त हो रही गौरैया की पीड़ा को महसूस कर सकें?

'लोक' की सामान्य समझ यही है कि यह एक अकृत्रिम दुनिया है। इसमें सब कुछ नैसर्गिक रूप में रहता है। इसमें हृदय का स्वाभाविक संसार विराजमान रहता है तथा बुद्धि तथा विज्ञान की बनावटी दुनिया का हस्तक्षेप यहाँ बहुत कम होता है। यह गाँव-गँवई की दुनिया है, जहाँ सब कुछ बहुत ही ठेठ अन्दाज में विद्यमान रहता है। आधुनिकता के अभिप्रवेश से इस दुनिया का विस्थापन हो रहा है। आज बड़े-बड़े बाँध बन रहे हैं, चौड़े-चौड़े राष्ट्रीय राजमार्ग बन रहे हैं। स्मार्ट सिटी की परिकल्पना में डूबे शहरों के उच्चावच और स्काईलाइन बदल रहे हैं। आधुनिक विकास की यही परिभाषा है, लेकिन इस विकास में ध्वंस भी समाहित है। यह ध्वंस उन वृक्षों के हिस्से में आता है, जिनका समूल नाश होता है। नदी, तालाब, बाग और झरनों के अलावा आदिवासियों और ग्रामीण लोगों के हिस्से में ध्वंस ही आता है। न जाने कितने गाँवों का भूगोल विलुप्त हो जाता है। सदियों से पनपी और विकसित हुई उस गाँव के लोकजीवन की संस्कृति, स्मृति और इतिहास समाप्त हो जाते हैं। बहरहाल, आधुनिक विकास के अपेक्षाकृत खामोश उन्मूलन को हमारी आधुनिक सभ्यता स्वीकार करती है, और लोकजीवन के सांस्कृतिक प्रत्ययों को उसके अनुरूप या तो बदल जाना होता है या विलुप्त हो जाना होता है।

इस सन्दर्भ में डॉ. केदारनाथ सिंह की कविता 'शहर की सफाई' बहुत अर्थपूर्ण है। इस

कविता में वे 'शिरीष के फूल' शीर्षक से लिखे गये आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के निबन्ध को याद करते हैं। भारतीय काव्य-परम्परा में अपनी महीन खुशबू और बारीक रेशों के लिए जाना जाने वाला यह पुष्प शहर की सफाई के निमित्त बुहारा जा रहा है। उसके त्वरित निस्तारण के लिए कचरे से लदा ट्रक प्रतीक्षमाण है। कालिदास से लेकर आचार्य द्विवेदी तक सौन्दर्य और सुगन्ध के प्रतीक का दुखद हश्र देखकर कवि भावुक हो जाता है। लेकिन फिर बरबस वह सोचने लगता है कि शहर की सफाई के लिए शिरीष के फूल की यह नियति बेहद जरूरी है-

शिरीष के फूल
झाड़ू से बुहारे जा रहे हैं
देखता हूँ सुबह-सुबह सारा फुटपाथ
पटा पड़ा है हरित-कपिश-फूलों से
वही जो कालिदास को
इतने प्रिय थे
और एक बड़ा-सा झाड़ू
उनकी महीन खुशबू
और रंगों के छोटे-छोटे रेशों समेत
उन्हें जल्दी-जल्दी बुहारे जा रहा है,

सड़क की ओर
और सड़क है कि
उसे फूलों की नहीं
कचरे से लदे ट्रक की प्रतीक्षा है
जो आ सकता है किसी भी क्षण

क्षमा करें गुरुवर
मैं चाहता जरूर हूँ
बल्कि अनजाने ही मेरा हाथ
बरजने की मुद्रा में उठ गया है
उसी तरफ
पर वहाँ जो हो रहा है
झाड़ू और हरित-कपिश फूलों के बीच

उसे रोक नहीं सकता

जो हो रहा है
वह शहर की सफाई के लिए
बेहद जरूरी है।[3]

आधुनिक विमर्श और उसका विकास यही काम करता है। यह शहरी-विमर्श है, जिसमें गाँव-गँवई की लोकसंस्कृति को कचरे के ट्रक में निपटाया ही जाता है। इसी बात को 'घुघुआ मन्ना' गा रही माई भी बहुत सूक्ष्मता से कहती है कि जब आधुनिक विमर्श के जरिए कुछ विकास होगा तो पुराने पत्ते उधिया जाएँगे। उखड़ कर उड़ जाएँगे। 'मूस' (चूहे) को बिलायी (बिल्ली) चाभ (खा) ही जाएगी। तभी तो डोकी की यह पीड़ा या टीस रह जाएगी कि 'अरगद छोड़लीं, बरगद छोड़लीं,

ताल भर क बकुला छोड़लीं,
हमार मूसओ मरि गईल।'[4]

इस बदलाव में मूसराम को मरना ही है। तभी नयी भीत (दीवार) बन पाएगी। इसीलिए इस लोकगीत में पुरानी भीत के गिरने की अपेक्षा भी है। यह पुरानी भीत लोक की भीत है, और शास्त्र की भी। भारत में आधुनिकता पश्चिम से आयी। इसीलिए अक्सर आधुनिकीकरण को पाश्चात्यीकरण भी कह दिया जाता है। यह भारत में उपनिवेशवाद के घर्घर रथ पर सवार होकर आयी थी। इसलिए इसमें विजेता का भाव था। इसमें स्थानीय लोकजीवन के साथ-साथ शास्त्र के प्रति हिकारत और उपेक्षा का भाव स्वाभाविक था। पूरे पौर्वात्य ज्ञान परम्परा को एक ही आलमारी में समेट देने की मैकाले की उक्ति से हम सब परिचित ही हैं। बहरहाल उपनिवेशवाद संचालित आधुनिक विमर्श के अन्तर्गत लोक और शास्त्र दोनों को ध्वस्त करने का अभियान चला। कभी तो इन्हें अतार्किक बताया गया और कभी एक दूसरे को लड़ा-भिड़ाकर ध्वस्त किया गया। इससे आधुनिकता की इमारत खड़ी होती है। आज भारतीय मनीषा का स्वरूप काफी कुछ बदल गया है। यह नयी नींव पर है। इसकी संरचना भी नयी है। नये अन्तःकरण और आस्वाद-बोध के साथ यह आज खुद को जानने और पहचानने में लगी हुई है। इतना अवश्य है कि आधुनिक भारतीय मनीषा ने नया कुछ बनाने में पुरानी 'भीतों' के ईंटों को फेंक नहीं दिया। उन्हें आधुनिक ढंग से सहेजा और सँवारा गया। आधुनिक जीवन-मूल्यों के आलोक में उनकी 'रिमॉडलिंग' की गयी। जातीय-स्मृतियों के घर-संसार को नया रूप दिया गया। नैतिकता के नये मानचित्र बने। चेतना का नया मूल्यबोध बना। अतः इस नयेपन में पुराना भी था। कारण यह है कि हमारी आधुनिकता ने हमें ट्रान्सफॉर्म नहीं किया। यह विकासमान (evolutionary) प्रक्रिया के रूप में अवतरित होती है। इसी को देशज आधुनिकता कहा जाता है।

इसका एक बड़ा उदाहरण गिरीश कर्नाड का नाटक 'हयवदन' है। यह नाटक टॉमस मान के 'द ट्रान्सपोज्ड हेड्स' पर निर्भर है। टॉमस मान पर 'कथासरित्सागर' की कहानियों का असर था। गिरीश कर्नाड के नाटक में भारतीय शास्त्र और लोक का अद्‌भुत संगम है। इसमें लोकतत्त्व का बहुत ही रचनात्मक उपयोग दिखता है। 'हयवदन' लोक एवं शास्त्र से संयुक्त होकर भी आधुनिक तथा उसके 'उत्तर' उपसर्ग से विभूषित परियोजना की अवधारणाओं को चित्रित करता है। यह हमारी देशज आधुनिकता की विलक्षण उपलब्धि है।

यह ठीक ही कहा जाता है कि भारतीय अन्तश्चेतना में आधुनिकता के अभिप्रवेश से पहले यहाँ लोक और शास्त्र का समन्वयमूलक सम्बन्ध था और कई जगह यह एक दूसरे को परिपूरित भी करता था। इसी कारण हमारी परम्परा का सबसे बड़ा कवि 'नानापुराणनिगमागम सम्मत' शास्त्रीय मत को लोकजीवन तथा लोकभाषा में संवलित करके 'भाखाबिद्ध' करता है। आधुनिक कवि के लिए भी अर्थ संकेत और नवता का स्रोत लोकजीवन ही है। अर्थविज्ञान ने भाषा और अर्थ संकेत आदिम बीजों की ओर संकेत किया और बताया कि अर्थवत्ता भरने का काम लोकजीवन ही करता है। उदाहरण के लिए आधुनिक चित्रकला को ही लें- इसमें घोड़ा, हाथी, कमल इत्यादि का प्रयोग हुआ है। परम्परित सन्दर्भों में घोड़ा गति और तीव्रता का प्रतीक है, हाथी शक्ति और गम्भीरता का। लोकजीवन का कमल अर्थात् पुरइन जल में रहकर जल से निर्लिप्त रहने का भाव तथा कीचड़ में धँस जीवनी-शक्ति को सहेज लेने का संकेत देता है। लोकजीवन के मिथक और लोकगाथाएँ होती हैं। इन्हें आद्य-रूप (आर्केटाइप) कहा जाता है। इन्हीं आद्य-रूपों को कालयुंग जैसे मनोविश्लेषणवादी सामूहिक अवचेतन कहते हैं। यहीं सामूहिक अवचेतन लोकजीवन की रचनात्मकता की थाती है। इसी थाती मे अपने-आप को समृद्ध करने के लिए अज्ञेय जैसा आधुनिक कवि अपने प्रयोगवादी रचनाशीलता के लिए लोकजीवन में लौटता है और 'मैले हो चुके उपमानों' को दरकिनार करते हुए अपनी प्रेमिका के लिए 'कलगी छरहरी बाजरे की' और 'हरी बिछली घास' जैसे उपमान खोज लाता है। और कवि केदारनाथ सिंह को भी जब लगता है कि आधुनिक-विमर्श ने उन्हें 'उजबक' ही माना है तो अपने को मिट्‌टी का नागरिक घोषित करते हुए पेड़ की छाँव में झपकी के लिए बैठ जाते हैं। सपने में 'बड़/ पाकड़ /गूलर/गंभार/मसान काली का दमकता सिंदूर' दिख जाता है। और इस व्यर्थ से लग रहे सब कुछ में कवि कुछ नया अर्थ खोजता है। निश्चित रूप से कवि के लिए नया अर्थ लोकजीवन से ही जाता है।

इस प्रकार आज 'लोक' का पुनः अन्तःप्रवेश हुआ है। लेकिन आधुनिकतावादी विमर्श के आरम्भिक दिनों में ऐसा नहीं था। उन दिनों की आधुनिकता 'अवतार' फिल्म के उस विध्वंसक मशीन की तरह थी, जो एक आदिम सभ्यता के विनाश पर आमादा थी। आधुनिकता के कुछ सशक्त और प्रगतिशील अवधारणात्मक प्रत्यय थे - जिनके आगे लोकजीवन के तोता-मैना, परी-अप्सरा,

रानी अम्मर कुँवर, डोका-डोकी और मूसऊ कहाँ तक टिक पाते? आधुनिकता की शक्ति यह थी कि वह तार्किक थी। उसके पास वैज्ञानिक दृष्टि थी। और आस्तिकता के विरुद्ध इहलौकिकता की प्रतिष्ठा उसकी प्रबल शक्ति थी। इसी कारण उसमें चयन और बहिष्करण की जबर्दस्त शक्ति थी। इस चयन और बहिष्करण के द्वारा सबसे पहले पिछड़े और आदिम समाजों की विविधता को समाप्त किया गया। उसके 'रेशनलाइजेशन' के अभियान में वे चीजें पीछे छूट गयीं जिनका व्यापक पैमाने पर औद्योगिक उत्पादन नहीं किया जा सकता था। इसीलिए भारतीय कृषि-व्यवस्था से सावाँ, मडुआ, टांगुन, कोदो आदि गायब हो गये। किसानी की विविधता ही नहीं, बल्कि भारतीय व्यंजनों की विविधता भी गायब हुई।

एक सुचिन्तित और सुव्याख्यायित अवधारणा होने के कारण आधुनिकता अनिवार्यतः द्विचर विरुद्धों में ही सोचती है। इसीलिए जो इसकी मान्यताओं के अनुरूप नहीं थे, उन्हें खारिज किया गया। यहाँ आकर आधुनिकतावादी विमर्श एक सत्ता-विमर्श बन जाता है। यह उन सब अस्मिताओं को लांछित (Stigmatize) करता है, जो इसके अनुरूप नहीं थे। मिशेल फूको ने अपने लेखन में सत्ता-विमर्श के इस लांछनीकरण की तकनीक पर विस्तार से विचार किया है। बहरहाल, कहना यह है कि एक आधुनिक मन को भला परियों, भूतों-प्रेतों, चुड़ैलों की दुनिया कहाँ तक ठीक लगती। ऐसी दुनिया जहाँ पक्षी सन्देश ले जा रहे हों, सोने की थारी में जेवना परोसे जा रहे हों, चाँदी की किवाड़ हो - यह सब निरर्थक लगने लगे। वैसे यह सब भले अतार्किक हों, लेकिन सदियों से संचित मानवीय स्मृतियों का निवास इसी में था। फूको हमारे समय की आधुनिकता के सबसे बड़े आलोचक हैं। वे बताते हैं कि अस्पताल और जेल आधुनिक सभ्यता के रेशनलाइजेशन के अभियान के दो सबसे बड़े हथियार हैं। इसी के द्वारा जरा-सी मानसिक या व्यावहारिक विकृति के कारण आपको समाज से बहिष्कृत किया जा सकता है। लोकसंस्कृति के तत्त्वों के साथ यही हुआ। आधुनिक आँखों ने वहाँ बहुत कुछ अतार्किक पाया।

भला हो जादुई यथार्थवादी लेखकों जिनके जरिए लोकसंस्कृति का पुनर्वास होता है। उत्तर-आधुनिक चिन्तन से प्रभावित इन लेखकों ने लोक-कथाओं और लोकगीतों में वर्णित प्रसंगों को पुनर्जीवन दिया। 'हण्ड्रेड ईयर्स ऑफ सॉलिट्यूड' मार्खेज का तीन सौ पचास पृष्ठों का उपन्यास है, यह 'वालेनातो' नामक लोक कथा-गीत के आधार पर लिखा गया। इसी तरह पूरी दुनिया में लोक-कथा पर आधारित कथा-साहित्य की वापसी होती है। अब लोक-कथाओं के माध्यम से लेखक समय के यथार्थ का बयान करने लगा है। 'तेरहवाँ घाट' सुवाइंग न्गुइट मिन्ह की प्रसिद्ध कहानी है। इस वियतनामी कहानी में अमेरिका द्वारा थोपे गये युद्ध की विभीषिका के फलस्वरूप 'साँपों' जैसे चेहरे वाले बच्चों को जनने वाली माँओं की व्यथा-कथा को लोक-कथा की शैली में बताया गया है।

इस प्रकार दुनिया भर के साहित्य में लोकसंस्कृति के तत्त्वों का पुनर्वास हुआ है। इसे उत्तर-आधुनिकता की देन कहा जा सकता है। लेकिन उत्तर-आधुनिक अभियान के अन्तर्गत लोकसंस्कृति के तत्त्वों को तरजीह दी गयी हो, उनकी महत्ता बढ़ी हो - ऐसी बात नहीं है। असल में, उत्तर आधुनिकता के अन्तर्गत लोकसंस्कृति के तत्त्वों का समावेश वैश्वीकरण के अभियान का हिस्सा है। वैश्वीकरण सर्वसमावेशी मुहिम है, जिसके अन्तर्गत सांस्कृतिक समरूपीकरण को बढ़ावा दिया जाता है।[6] हर्बर्ट शिलर इसे सांस्कृतिक साम्राज्यवाद कहते हैं।[7] इस सांस्कृतिक साम्राज्यवाद के द्वारा लोक के तत्त्वों को समाविष्ट करते हुए उन्हें एक समरूपता एवं वर्चस्व के दायरे में लाया जाता है। इस दृष्टि से अर्थशास्त्री गिरीश मिश्र ठीक ही कहते हैं कि "नयी भूमण्डलीय संस्कृति क्षेत्रीयता को समाप्त कर एक सीमामुक्त विश्व की ओर ले जाती है।"[8] कहने का तात्पर्य यह है कि उत्तर-आधुनिक दौर में भी पश्चिम ने अपने को वर्चस्वी भूमिका के रूप में रखा। यह भले ही अपने को लोकसंस्कृति के संरक्षक के तौर पर प्रस्तुत करे, असलियत यह है कि लोकसंस्कृति भूमण्डलीकरण की कैरी बनकर रह जाती है।

सन्दर्भ-सूची

1. एरिक जे. हाब्सबाम, भूमिका से उद्धृत, द इन्वेन्शन ऑफ ट्रेडिशन, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस-1983
2. पूर्वी उत्तर प्रदेश एवं पश्चिम बिहार का लोकगीत
3. डॉ. केदारनाथ सिंह, उत्तर कबीर और अन्य रचनाएँ, कविता 'शहर की सफाई', राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
4. पूर्वी उत्तर प्रदेश की लोककथा
5. डॉ. केदारनाथ सिंह, 'मतदान केन्द्र' कविता से उद्धृत
6. फ्रीडमैन, द लेक्सस एण्ड दी ऑलिव ट्री, न्यूयार्क, 1999, पृ. सं. 8
7. हर्बर्ट आई. शिलर, कम्यूनिकेशन एण्ड कल्चरल डॉमिनेशन, न्यूयार्क 1976, भूमिका
8. गिरीश मिश्र, साहित्य में समाज, अभिधा प्रकाशन, 2008, पृ.सं. 18

हिन्दी की विकास यात्रा में भारतीय संसद का योगदान

डा. अविनाश प्रताप सिंह*

स्वाभाविक और सांस्कृतिक रूप से हिन्दी हमारी मातृभाषा है लेकिन दुर्भाग्य से वह मात्र एक भाषा ही बन कर रह गयी। हम सब इस बात को भली-भाँति जानते हैं कि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में हिन्दी भाषा के माध्यम से राष्ट्रीय स्वाभिमान का शंखनाद घर-घर पहुँचाया गया था। स्वदेश प्रेम और स्वदेशी भाव की मानसिकता को सांस्कृतिक और राजनीतिक स्वरूप प्रदान करते हुए नवजागरण को राष्ट्रीय अस्मिता के रूप में हिन्दी को प्रतिष्ठित किया गया, इस विश्वास के साथ कि जब स्वशासन की स्थापना का समय आयेगा तब यही हिन्दी हमारे राष्ट्रीय एकता के प्रतीक के रूप में देश की अखण्डता और राष्ट्रीय स्वाभिमान का भाव प्रतिष्ठित करेगी। इस दृष्टि से हिन्दी भाषा की विकास यात्रा के क्रम में दो बातों को केन्द्र में रखकर प्रथम संविधान सभा जो भारत की राज्य व्यवस्था के नींव का निर्माण कर रही थी, जिसपर भविष्य का भारत खड़ा होने वाला था और दूसरा भारतीय संविधान के अन्तर्गत समय-समय पर संसद द्वारा हिन्दी भाषा के सम्बन्ध में किये गये प्रावधान महत्वपूर्ण है।

जब हम स्वतंत्र भारत में हिन्दी की विकास यात्रा में भारतीय संसद का योगदान विषय पर चर्चा कर रहें हो तो यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम यह जानें कि संविधान सभा में हिन्दी को लेकर क्या विचार हुआ। अन्ततः लम्बे संघर्ष के उपरान्त ब्रिटिश शासन घोर अत्याचारों से देश आजाद हो रहा था। अपना संविधान रचने के लिए तत्पर था। आजादी आयी और हमने संविधान बनाने का उपक्रम प्रारम्भ किया। 1946 से लेकर 1949 तक जब भारतीय संविधान का मसौदा तैयार किया जा रहा था, उस दौरान भारत से जुड़े सभी मुद्दों को लेकर संविधान सभा में लम्बी बहस हुयी लेकिन सबसे विवादित विषय रहा भाषा। संविधान को किस भाषा में लिखा जाय, सदन में कौन सी भाषा को अपनाया जाय, किस भाषा को राष्ट्रभाषा का स्थान दिया जाए।[1] 12 सितम्बर 1949 से लगातार दो दिनों तक हिन्दी को लेकर वाद-विवाद और विचार-विमर्श चलता रहा। लगभग तीन सौ से अधिक संशोधन प्रस्तुत हुआ।[2] बहस समाप्त होने के उपरान्त संविधान का तत्कालीन भाग 14 क

*महाराणा प्रताप पी.जी. कॉलेज, जंगल धूसड़, गोरखपुर

और वर्तमान भाग 17 संविधान हिन्दी से सम्बन्धित भाग बन गया।

संविधान सभा में हिन्दी विषय पर बहस पर प्रकाश डालते हुए इतिहासविद् रामचन्द्र गुहा की किताब 'इण्डिया आफ्टर गांधी' में लिखा है कि जब एक सदस्य आर.बी. धुलेकर ने हिन्दुस्तानी में अपनी बात कहनी शुरू की तब अध्यक्ष ने उन्हें कहा कि यहाँ अधिकतर लोगों को हिन्दी नहीं आती इसलिए उनकी बात समझ नहीं पर रहें है, इस पर धुलेकर ने कहा कि 'जिन्हें हिन्दुस्तानी नहीं आती, उन्हे इस देश में रहने का हक नहीं है।[3] उपरोक्त सन्दर्भ से यह सामान्यतया अनुमानित है कि हिन्दी की स्थिति संविधान सभा में क्या थी। वही मद्रास के प्रतिनिधि टी.टी. कृष्णमचारी ने बड़ी साफगोई से कहा 'मुझे अंग्रेजी पसंद नहीं क्योंकि इसकी वजह से मुझे जबरदस्ती शेक्सपीयर और मिल्टन को सीखना पड़ा.....अब अगर हमें हिन्दी सीखने के लिए मजबूर किया जायेगा तो मेरे लिए मुश्किल होगी.....उन्हें अखण्ड भारत चाहिए या हिन्दी भारत.....,[4]। संविधान सभा की भाषा विषयक बहस लगभग 278 पृष्ठों में मुद्रित है। डॉ. कन्हैलाल माणिकलाल मुंशी एवं श्री गोपाल स्वामी आयंगर की भूमिका हिन्दी भाषा के विवाद को सुलझाने में महत्वपूर्ण भूमिका रही।

यद्यपि हिन्दी भाषा की सर्वस्वीकार्यता को लेकर संविधान सभा दो भागों में पूर्णत: विभाजित थी। स्वयं कांग्रेस दल दो गुटों में बंटी थी, एक ओर सेठ गोविन्द दास, डॉ. रघुवीरा, श्री पुरुषोत्तम दास टण्डन और श्री मोरारजी देसाई सहित कई लोग हिन्दी के प्रबल पक्षधर थे, तो वहीं दूसरी ओर श्री टी.टी. कृष्णमचारी, श्री कामराज नायर और पण्डित जवाहर लाल नेहरू जैसे लोग गैर हिन्दी भाषी राज्यों पर हिन्दी थोपे जाने के विरुद्ध थे।[5] वहीं समाजवादी भी दो गुटों में विभक्त थे, आचार्य नरेन्द्र देव, श्री राममनोहर लोहिया आदि हिन्दी को अंगीकार करना चाहते थे, जबकि श्री जार्ज फर्नान्डीज सहित अन्य साम्यवादी हिन्दी को राजभाषा बनाये जाने का विरोध कर रहे थे।[6]

अन्तत: तीन दिन के गहन विचार विमर्श के पश्चात् 14 सितम्बर 1949 को स्वतन्त्र भारत की संविधान बनाने वाली सभा ने संघ की राजभाषा के रूप में देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली, हिन्दी स्वीकार किया।[7] साथ ही यह प्रावधान किया कि 15 वर्षों अर्थात 25 जनवरी 1965 तक अंग्रेजी का प्रयोग अधिकारिक रूप से उन प्रयोजनों के लिए जारी रहेगा जिनके लिए 1950 से पूर्व इसका उपयोग होता था।[7]' संविधान सभा ने भारतीय संविधान में भाग 17 के अन्तर्गत हिन्दी से सम्बन्धित अनुच्छेद 343 से 351 तक के महत्वपूर्ण प्रावधान किये हैं। इन्ही प्रावधानों के आधार पर भविष्य में भारतीय संसद ने अनेक नियम, परिनियम एवं उपबन्धों के द्वारा हिन्दी के विकास में गति प्रदान किया है।

संविधान के अनुच्छेद 343 मे यह लिखा गया कि अगले 15 वर्षों तक अंग्रेजी इस देश में संघ सरकार की भाषा रहेगी और राज्य सरकारें चाहे तो ऐसा कर सकती है। 15 वर्ष के उपरान्त एक संसदीय समिति बनाई जायेगी जो अपना विचार देगी अंग्रेजी के बारे में और फिर राष्ट्रपति की

अनुशंसा के बाद विधेयक बनाकर अंग्रेजी को हटा दिया जायेगा। उसके स्थान पर हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं को स्थापित किया जायेगा। हिन्दी को राजभाषा बनाये जाने का विरोध भी गैर हिन्दी राज्यों में इसी के साथ प्रारम्भ हो गया। फलस्वरूप भाषा विवाद को हल करने के लिए सरकार ने संवैधानिक व्यवस्था के अन्तर्गत 7 जून 1955 में श्री बी.जी. खरे की अध्यक्षता में पहला राजभाषा आयोग नियुक्त किया, जिसने 31 जुलाई 1956 में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया।[9] आयोग ने अपना प्रतिवेदन राष्ट्रपति को प्रस्तुत किया। इस प्रतिवेदन में सब बातों के साथ-साथ एक महत्वपूर्ण सिफारिश किया कि संघ के किसी प्रयोजन हेतु अंग्रेजी के प्रयोग पर कोई निर्बंधन नहीं लगाया जाना चाहिए और अनुच्छेद-343 के खण्ड (3) के निर्बंधनों के अनुसार 1965 के पश्चात संसद द्वारा विनिर्दिष्ट प्रयोजनों हेतु जब तक आवश्यक हो, तब तक अंग्रेजी के प्रयोग का उपबन्ध किया जाना चाहिए।[10] राजभाषा आयोग की रिपोर्ट पर समीक्षा हेतु पण्डित गोविन्द बल्लभ पंत की अध्यक्षता में 1957 में बनी 30 सदस्यीय संयुक्त संसदीय समिति का गठन किया गया।[11]

संसद की राजभाषा समिति ने 8 फरवरी 1959 को राष्ट्रपति को अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। समिति का विचार था कि 26 जनवरी 1965 के पश्चात अंग्रेजी का प्रयोग सह-राजभाषा के रूप जारी रहना चाहिए, के साथ अन्य सुझाव भी दिये, जिस पर लोकसभा और राज्य सभा में बहस हुयी। संसद द्वारा यह निर्णय किया गया जब तक अहिन्दी भाषी क्षेत्र, अंग्रेजी भाषा के प्रयोग को बन्द करने पर राजी न हो जाएं, इस सम्बन्ध में समय-सीमा की कोई बंदिश नहीं होगी।[12]

संयुक्त संसदीय समिति द्वारा रिपोर्ट पर विचार करने के उपरान्त राष्ट्रपति ने 27 अप्रैल 1960 को एक आदेश जारी किया जिसमें अन्य बातों के अलावा यह भी उल्लिखित था कि संसदीय विधान कार्य अंग्रेजी में चलता रहेगा, किन्तु इसके प्रमाणिक हिन्दी अनुवाद की व्याख्या की जाए।[13]

जैसे ही भारतीय संविधान (संविधान सभा) द्वारा निर्धारित 26 जनवरी 1965 का दिन समीप आने लगा अहिन्दी भाषी लोग के मस्तिष्क में अशांति और आशंकाएं पैदा होने लगी, यद्यपि तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू ने 7 अगस्त 1963 को लोकसभा में घोषणा कर चुके थे कि अहिन्दी भाषी लोगों पर हिन्दी थोपी नहीं जायेगी।[14] इसी सन्दर्भ में 10 मई 1963 को राजभाषा अधिनियम 1963 संसद द्वारा पारित किया गया। इस अधिनियम की धारा-3 में यह प्रावधान किया गया कि संविधान के प्रारम्भ से 15 वर्ष की कालावधि के समाप्त हो जाने पर भी, हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा, नियत दिन से ही संघ के उन सब राजकीय प्रयोजनों के लिए, जिन के लिए वह, उस दिन से ठीक पहले प्रयोग में लायी जाती थी, तथा संसद में कार्य के संव्यवहार के लिए प्रयोग में लायी जाती रह सकेगी।[14] इसी प्रकार अधिनियम की धारा 4 में 26 जनवरी 1965 से 10 वर्ष के समय के पश्चात, संसदीय राजभाषा समिति का गठन का प्रावधान है।[15] इस अधिनियम से यद्यपि यह स्पष्ट हो गया कि फिलहाल संसद (तत्कालीन सत्ताधारी दल) अभी भी हिन्दी को भारत

की एक मात्र राजभाषा बनाने के पक्ष में नही है। कारण बताया गया कि हिन्दी के विरोध में देश में दंगे शुरू हो गए इस कारण अभी अंग्रेजी को राजकाज की भाषा के स्थान से नही हटाया जायेगा।

हिन्दी की विकास यात्रा के क्रम में राजभाषा संकल्प 1968 कम महत्वपूर्ण नही है। भारतीय संसद के दोनो सदनों ने संकल्प पारित करते हुए संविधान के अनुच्छेद 351 के अधीन हिन्दी भाषा का प्रसार, वृद्धि और उसका विकास करने हेतु विविध व्यवस्थाओं का उल्लेख किया।[16]

यहाँ पर यह कहना समीचीन होगा कि संविधान सभा के गठन और हिन्दी को राजभाषा/राष्ट्रभाषा बनाने का प्रयास से लेकर भारतीय संसद द्वारा पारित अनेक उपबन्धों के आलोक में यही कहा जा सकता है कि हिन्दी वोट बैंक की राजनीति और अंग्रेजीयत का शिकार हो गयी और आज तक इस दृष्टि से संक्रमण के दौर से गुजर रही हैं। अगर हम हिन्दी के विकास यात्रा का संविधान सभा और उसके उपरान्त संसद के योगदान के सम्बन्ध में तो स्पष्टत: यह कहा जा सकता है कि लाख विरोध के बावजूद संविधान सभा में हमारी हिन्दी ताकतवर स्थिति में थी लेकिन स्वतंत्र भारत में राजनेताओं के तथाकथित सोच और सत्ता लोलुप राजनीति के कारण अभी उसको अपना स्थान प्राप्त करना शेष है। हमको दुनिया के उन तमाम देशों सीख लेनी चाहिए जिन्होने स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरंत बाद ही अपनी गुलामी के सभी प्रतीकों को मिटा दिया लेकिन हम आज भी उनको अपने कंधे पर उठाये घूम रहे है। हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप मे प्रतिष्ठित करने के हम सबको विशेषकर राजसत्ता के प्रतिनिधियों को दृढ़ इच्छा शक्ति के साथ आगे आकर कार्य करने की महती आवश्यकता है तभी हिन्दी को उसका सम्मान प्राप्त हो सकेगा।

सन्दर्भ

1. कल्पना, मै और मेरी हिन्दी... https:// khabar,ndtv.com/news// india/hindi-diwas hindi-and-the-case-of national-language. 21 सितम्बर 2016,
2. https:// www.jagran.com सिंघवी, लक्ष्मी मल्ल, संविधान में हिन्दी, अभिव्यक्ति, 14 सितम्बर 2011,
3. https:// khabar.ndtv.com कल्पना, मै और मेरी हिन्दी
4. वही
5. सईद, एस.एम भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, भारत बुक सेण्टर, लखनऊ, 2015, पृष्ठठ 496
6. वहीं पृष्ठ 497
7. वासवानी किशोर राजभाषा हिन्दी : विवेचना और प्रयुक्ति वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003।

7' लक्ष्मीकांत, एम., भारत की राजव्यवस्था, मैग्राहिल इजूकेशन प्रा.लि., नई दिल्ली, खडे पृष्ठ 58.1।

8. अनुच्छेद 344, भारत का संविधान
9. सईद, एस.एम., भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, भारत बुक सेन्टर, लखनऊ, 2015, पृष्ठ 498।
10. शर्मा, राजेन्द्र प्रसाद, स्पेक्ट्रम बुक्स प्रा.लि., नई दिल्ली 2014, पृ. 262।
11. लक्ष्मीकान्त एम., भारत की राजव्यवस्था, मैग्राहिल, एजुकेशन प्रा.लि., नई दिल्ली 2015, पृष्ठ 58।

12. संयुक्त संसदीय राजभाषा समिति का प्रतिवेदन, 1957, rajbhasha.nic.in।
13. शर्मा, राजेन्द्र प्रसाद, स्पेक्ट्रम बुक्स प्रा.लि., नई दिल्ली, 2014 पृष्ठ 262।
14. राजभाषा अधिनियम 1963, rajbhasha.nic.in।
15. वही।
16. राजभाषा संकल्प 1968।

पुनर्पाठ

अपनी भाषा पर विचार

- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

भाषा का प्रयोग मन में आई हुई भावनाओं को प्रदर्शित करने के लिए होता है।

इससे यह समझना कि संसार की किसी भाषा द्वारा मनुष्य के हृदय के भीतर की सब भावनाएँ ज्यों की त्यों बाहरी सृष्टि में लाई जा सकती हैं सो ठीक नहीं। किन्तु किसी भाषा की श्रेष्ठता निश्चित करने के लिए यह विचार करना आवश्यक होता है कि वह अपने इस कार्य में कहाँ तक समर्थ है अर्थात् हृदयस्थित भावनाओं का कितना अंश वह प्रतिबिम्बित करके झलका सकती है। अभी तक मानव कल्पना में ऐसे ऐसे रहस्य छिपे पड़े हैं जिनको प्रकाशित करने के लिए कोई भाषा ही नहीं बनी है। स्मरण रखिए कि यह बात मैंने भावनाओं (Impressions) के विषय में कही है, विचारों (General notions) के विषय में नहीं।

भाषा की व्यंजक शक्ति दो वस्तुओं पर अवलम्बित है- 'शब्द विस्तार' और 'शब्द योजना'।

शब्द विस्तार

जिस भाषा में शब्दों की कमी है उसका प्रभाव मनुष्य के कार्य कलाप पर बहुत थोड़ा है। उस भाषा का बोलने वाला बहुत सी बातों को जानता हुआ भी अनजान बना रहता है। यद्यपि शब्दों की बहुतायत से भाषा की पुष्टि होती है तथापि कई बातें ऐसी हैं जो उसकी सीमा स्थिर करती हैं। जिस जलवायु ने हमारे स्वभाव और रूपरंग को रचा उसी ने हमारे शब्दों को भी सृजा। ये शब्द हमारे जीवन के अंश समान हैं। इनमें से हर एक हमारी किसी न किसी मानसिक अवस्था का चित्र है। इनकी ध्वमनि में भी हमारे लिए एक आकर्षण विशेष है। निज भाषा के किसी शब्द से जिस मात्र का भाव उद्भूत होता है उस मात्र का समान अर्थवाची किसी विदेशीय शब्द से नहीं। क्योंकि पहले तो विजातीय शब्दों की ध्वनि ही हमारी स्वाभाविक रुचि से मेल नहीं खाती, दूसरे वे विस्तार में हमारे मानसिक संस्कार के नाप के नहीं होते। आजकल हिन्दी की अवस्था कुछ विलक्षण हो रही है। उचित पथ के सिवाय उसके लिए तीन और मार्ग खोले गए हैं एक, जिसमें बिना किसी विचार के संस्कृत के शब्द और समास बिछाए जाते हैंय दूसरा, जिसको उर्दू कहना चाहिएय इनके अतिरिद्र एक 'तृतीय

*प्रतिष्ठित साहित्यकार एवं लेखक

पथ' भी खुल रहा है जिसमें अप्रचलित अरबी, फारसी और संस्कृत शब्द एक पंक्ति में बैठाए जाते हैं। मैं यह नहीं चाहता कि अरबी और फारसी आदि विदेशीय भाषाओं के शब्द जो हमारी बोली में आ गए हैं, जिन्हें बिना बोले हम नहीं रह सकते, वे निकाल दिए जायँ। किन्तु क्लिष्ट और अप्रचलित विदेशीय शब्दों को व्यर्थ लाकर भाषा के सिर ऋण मढ़ना ठीक नहीं। सहायता के लिए किसी अन्य विदेशीय भाषा के शब्दों को लाना हानिकारक नहीं; किन्तु उनकी संख्या इतनी न हो कि स्थानीय भाषा के आधीन रहकर काम करने के स्थान पर, वे उसी को अधिकारच्युत करने का यत्न करने लगें। अब यहाँ पर प्रश्न हो सकता है कि अरबी वा फारसी के कौन शब्द हिन्दी में लिए जायँ और कौन न लिए जायँ। मेरी समझ में तो हिन्दी में वे ही अरबी फारसी शब्द लिए जा सकते हैं जिनको वे लोग भी बोलते हैं जिन्होंने उर्दू कभी नहीं पढ़ी है, जैसे जरूर, मुकदमा, मजदूर। जो शब्द लोग मौलवी साहब से सीखकर बोलते हैं उनका दूर होना ही हिन्दी के लिए अच्छा है।

राजा शिवप्रसाद मुसलमानी हिन्दी का स्वप्न ही देखते रहे कि भारतेन्दु ने स्वच्छ आर्य हिन्दी की शुभ्र छटा दिखाकर लोगों को चमत्कृत कर दिया। लोग चकपका उठे, यह बात उन्हें प्रत्यक्ष देख पड़ी कि यदि हमारे प्राचीन धर्म, गौरव और विचारों की रक्षा होगी तो इसी भाषा के द्वारा। स्वार्थी लोग समय समय पर चक्र चलाते ही रहे किन्तु भारतेन्दु की स्वच्छ चंद्रिका में जो एक बेर अपने गौरव की झलक लोगों ने देख पाई वह उनके चित्त से न हटी। कहने की आवश्यकता नहीं कि भाषा ही जाति के धार्मिक और जातीय विचारों की रक्षिणी है; वही उसके पूर्व गौरव का स्मरण कराती हुई, हीन से हीन दशा में भी, उसमें आत्माभिमान का स्रोत बहाती है। किसी जाति को अशक्त करने का सबसे सहज उपाय उसकी भाषा को नष्ट करना है। हमारी नस नस से स्वदेश और स्वजाति का अभिमान कैसे निकल गया; हमारे हृदय से आर्य भावनाओं का कैसे लोप हो गया? क्या यह भी बतलाना पड़ेगा? इधर सैकड़ों वर्ष से हम अपने पूर्व संचित संस्कारों को जलांजलि दे रहे थे। भारतवर्ष की भुवनमोहिनी छटा से मुँह मोड़कर शीराज और इस्फहान की ओर लौ लगाए थे: गंगा जमुना के शीतल शान्तिदायक तट को छोड़कर इफरात और दजला के रेतीले मैदानों के लिए लालायित हो रहे थे; हाथ में अलिफलैला की किताब पड़ी रहती थी, एक झपकी ले लेते थे तो अलीबाबा के अस्तबल में जा पहुँचते थे। हातिम की सखावत के सामने कर्ण का दान और युधिष्ठिर का सत्यवाद भूल गया था; शीरीं फरहाद के इश्क ने नलदमयन्ती के सात्विक और स्वाभाविक प्रेम की चर्चा बन्द कर दी थी। मालती, मल्लिका केतकी आदि फूलों का नाम लेते या तो हमारी जीभ लटपटाती थी या हमको शर्म मालूम होती थी। वसन्त ऋतु का आगमन भारत में होता था, आमों की मंजरी से चारों दिशाएँ आच्छादित होती थीं पर हमको कुछ खबर नहीं रहती थी, हम उन दिनों गुले लाला और गुले नरगिस के फिश्राकष् में रहते थे; मधुकर गूँजते और कोइलें कूकती थीं, पर हम तनिक भी न चौंकते थे, अड्डे पर कान लगाए हम बुलबुल का नाला सुनते थे।

यहाँ पर एक बात हम स्पष्ट रूप से कह देना चाहते हैं। हम हिन्दू हैं, हिन्दुस्तान हमारा देश है, हिन्दी हमारी भाषा है। इस भाषा में अवश्यमेव हिन्दुओं के आचार विचार का आभास रहेगा, इसमें अवश्य उनके प्राचीन गौरव की गंध रहेगी कुढ़ने वाले भले ही कुढ़ें। वह सहायता के लिए भरसक संस्कृत ही का मुँह देखेगी। मुठ्ठी भर मुसलमानों के लिए हम कदापि अपनी भाषा को लांछित न करेंगे। यदि मुसलमान लोग उसे नहीं समझना चाहते तो न समझें, हमारी कोई हानि नहीं। मुसलमान लोग तो तनिक भी शीन कषफ के बाहर न हों और हम भौंदू बने उनके पास खसकते जायँ ऐसी कौन सी आफत आई है। यह भी कोई राजनीतिक युक्ति नहीं है कि एक तरफ तो मुसलमान लोग ऐंठे जा रहे हैं, दूसरी तरफ हमारे माननीय लोग अपनी मधुर वक्तृताओं में उन्हें लपेटते जा रहे हैं। यदि कहिए की इस प्रान्त के अधिकांश शिक्षित लोगों की एक भाषा बन गई है उसी को चटपट ग्रहण कर लेने से समय की बचत होगी तो भी ठीक नहीं, क्योंकि वह भाषा एक अस्वाभाविक शिक्षा से बनी है और उसी शिक्षा ही के साथ हवा हो सकती है। यदि आज से हमारे बच्चों के हाथ में खालकबारी के स्थान पर अमरकोश दे दिया जाय और अंगरेजी के साथ उन्हें संस्कृत या हिन्दी का अभ्यास कराया जाय तो यही हिन्दी बीस वर्ष के भीतर ही गली गली सुनाई देने लगे। क्या बंगला देश में मुसलमान नहीं हैं? क्या संस्कृत मिश्रित बंगला भाषा के लिए वहाँ राह नहीं निकल गई? क्या छोटे छोटे बंगालियों के बालक उन संस्कृत शब्दों को मधुरता से उच्चारण करते नहीं पाए जाते जिनको सुनकर हमारे मुंशी लोग इतना चौंकते हैं? जबकि देश में राष्ट्रीयता की इतनी चर्चा फैल रही है, जब नागरी को राष्ट्रलिपि और हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का उद्योग बंगाल और महाराष्ट्र प्रदेशों में भी हो रहा है, उस समय हिन्दी को इन प्रदेशों की भाषाओं से दूर हटना ठीक नहीं वरन् उसको अपने उस अंश की कुछ वृद्धि करनी चाहिए जो उन सब भाषाओं में सम्मिलित (Common) है। यह सम्मिलित अंश संस्कृत शब्दों का समूह है।

जब एक बार राजा शिवप्रसाद की मुसलमानी हिन्दी को दबाकर भारतेन्दु की हिन्दी अग्रसर हुई और आज तक बराबर निर्विवाद रूप से स्वीकृत होती आई तब इस फारसीदार हिन्दी की चर्चा फिर कैसे आरम्भ हो गई इसका विचार करना है। इसका दूसरा उत्थान फिर काशी के तिलस्मी उपन्यासों में देख पड़ा जिनकी रचना उर्दूदाँ 'क ख' पहिचानने वालों को भी फँसाने में समर्थ हुई। एक को लाभ उठाते देख दूसरे ने भी उसी मार्ग पर पैर रक्खा वही ऐय्यारी, वही तिलस्म, वही भाषा, वही सब कुछ। कई लोग साहसपूर्वक आगे बढ़े और उर्दू नावेलों को सामने रख और उन्हें नागरी अक्षरों में उतारकर नाम और दाम कमाने लगे। किन्तु तब तक यह हवा और श्रेणी के लेखकों को नहीं लगी थी। सहसा प्रयाग की सरस्वती के मालिकों का ध्या न सरलता की ओर जा पड़ाय ग्राहक बढ़ाने के हेतु पत्रिका को सरल और कौतूहल प्रदायिनी बनाने की चेष्टा होने लगी। इस सरलता का जाज्वल्यमान उदाहरण पहिले पहल 1904 ई. में 'नास्तिक आस्तिक संवाद' प्रकाशित हुआ। इसमें मजाज, तकप्रीर, दकीका, महदूद, ऐब-जोई, हकीर और कोताह बुद्धिक्व आदि शब्दों द्वारा भाषा

एकबारगी सरल कर दी गई। उसी में ये वाक्य देख पड़े ''जिस समय ईश्वर, जिसकी हस्ती की बाबत आपको शंका है, आपकी ज्ञान लब दुर्विदग्धाता को खो देगा...''

कहिए यह भाषा को सरल करना है या उसको और भी कठिन बनाना है। ऐसी भाषा लिखने के पहिले 'करीमुल्लुगात' का एक नागरी संस्करण छापना चाहिए। जो लोग केवल हिन्दी वा संस्कृत ही जानते हैं वे इस 'हस्ती' को 'हाथी' समझें या और कुछ।

यह पत्रिका सरलता के इतना पीछे पड़ी है कि कभी कभी साधारण प्रचलित शब्द भी बिना अरबी टीका के नहीं जाने पाते, देखिए

''यदि वह बात वा राय सर्वथा सच नहीं है, केवल उसका कुछ ही अंश सच है तो भी यदि वह प्रगट न की जायगी जाहिर न की जायेगी।''

''तथापि वे कृतकार्य नहीं हुए उनको कामयाबी नहीं हुई।'' ''यह बात विधि विरुद्ध है जाब्ते के खिलाफ है।'' जो मनुष्य 'सर्वथा' और 'अंश' को समझ सकता था क्या वह 'प्रगट' को न समझता जो फिर से 'जाहिर' लिखने की जरूरत हुई? इस प्रकार की भाषा लिखना मानो उर्दू वालों को यह कहने का अवसर देना है कि उर्दू इतनी आमफहम है कि बिना उसकी सहायता के हिन्दी किसी को एक बात भी नहीं समझा सकती। मेरी जान में तो फौकियत, जुहला, मजामीन, मुहक्किकीन, तमस्खुर आदि शब्द साधारण हिन्दी जाननेवाले लोग नहीं समझ सकते।

गवर्नमेंट तथा शिक्षा विभाग की अभिरुचि का कुछ अंश भी इस प्रवृत्ति का परिचालक है। सरकार कोई निज की स्वतन्त्र सम्मति तो रखती नहीं; जो हाकिमों और नवाबों ने सुझाया वही उसका अटल सिद्धान्त हो गया, उसी पर वह जम गई। यदि कोई और प्रान्त होता तो सरकार को अपनी इस कुरुचि का फल चखाने में क्व आश्चर्य की बात है कि एक महीने पहिले द्विवेदी जी ने नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'भौगोलिक परिभाषा' के 'थाह मापक' सूत्र की आलोचना इस प्रकार की थी।'' 'थाह' प्राकृत और 'मापक' संस्कृत! इस तरह का समास, हमने सुना था, नहीं होता।' हम नहीं समझते कि फिर 'कोताह' फारसी और 'बुद्धि' संस्कृत का समास कैसे हो गया।

कुछ देर लगती पर यह सर सैयद अहमद और राजा शिवप्रसाद की जन्मभूमि कब उसको मीठा कहकर बाँटनेवाले लोगों से खाली रह सकती है।

ऐसे अप्रचलित फारसी शब्दों के बिना हमारा कोई काम नहीं अटकताय क्योंकि उनके स्थान पर रखने के लिए हमें न जाने कितने संस्कृत क्या हिन्दी ही शब्द मिल सकते हैं। हाँ, जिन विचारों के लिए हिन्दी वा संस्कृत शब्द न मिलें उनको प्रगट करने के लिए हम विजातीय शब्द लाकर अपनी भाषा की वृद्धि मान सकते हैं। एक ही वस्तु के लिए अनेक शब्दों के होने से भाषा की क्रिया में कुछ उन्नति नहीं होती। जैसे सूर्य के लिए रवि, मार्त्तण्ड, प्रभाकर, दिवाकर और चन्द्रमा के लिए

शशि, इन्दु, विधा, मयंक आदि बहुत से शब्दों के होने से भाषा की व्यंजक शक्ति में कुछ भी वृद्धि नहीं होती, केवल ध्वनि की भिन्नता वा नवीनता से हमारा मनोरंजन होता है और भाषा में एक प्रकार का चमत्कार आ जाता है जो कविता के लिए आवश्यक है। इन अनेक नामों में से साधारण गद्य में उसी शब्द को स्थान देना चाहिए जो सबसे अधिक प्रचलित है, जैसे सूर्य, चन्द्रमा। 'रवि उदय होता है', 'भास्कर अस्त होता है', 'विधु का प्रकाश फैलता है', ऐसे ऐसे वाक्य कानों को खटकते हैं और कृत्रिम जान पड़ते हैं। हाँ, जहाँ 'प्रचण्ड मार्तण्ड की उद्दण्डता', दिखाना हो वहाँ की बात दूसरी है पर मैं तो वहाँ भी ऐसे शब्दों की उतनी अधिक आवश्यकता नहीं समझता। शब्दालंकार केवल कविता के लिए प्रयोजनीय कहा जा सकता है। गद्य में उसकी कोई विशेष आवश्यकता नहीं है, गद्य में तो उसके और गुणों के अन्वेषण ही से छुट्टी नहीं मिलती। गद्य की श्रेष्ठता तो भावों की गुरुता और उनके प्रदर्शन प्रणाली की स्पष्टता वा स्वच्छता ही पर अवलम्बित है; और यह स्पष्टता और स्वच्छता अधिकतर व्याकरण की पाबन्दी और तर्कना की उपयुक्तता से सम्बन्ध रखती है। सारांश यह कि आधुनिक शैली के अनुसार गद्य में शब्द और अर्थ ही का विचार होता है, ध्वानि का नहीं।

शब्द योजना

यहाँ तक तो शब्द विस्तार की बात हुई। आगे भाषा के इससे भी गुरुतर और प्रयोजनीय अंश अर्थात् शब्द योजना पर ध्यान देना है। भाषा उत्पन्न करने के लिए असंख्य शब्दों का होना ही बस नहीं है। क्योंकि पृथक् पृथक् वे कुछ भी नहीं कर सकते। वे कल्पना में इन्द्रिय कम्प द्वारा खचित एक एक स्वरूप के लिए भिन्न भिन्न संकेत मात्र हैं। कोई ऐसा पूरा विचार (Complete notion) उत्पन्न करने के लिए जो मनुष्य की प्रकृति पर कोई प्रभाव डाले अर्थात् उसकी भौतिक वा मानसिक स्थिति में कुछ फेरफार उत्पन्न करे, हमें शब्दों को एक साथ संयोजित करना पड़ता है।

यहाँ ध्वनि से मेरा अभिप्राय 'यत्र वाच्याविशयि व्यंग्य स ध्वेनिरू' नहीं वरन् नाद से है।

जैसे कोई मनुष्य सड़क पर चला जाता है, यदि हम पीछे से उसको सुनाकर कहें कि 'मकान', तो वह मनुष्य कुछ भी ध्यान न देगा और चला जायगा; किन्तु यदि पुकारें कि 'मकान गिरता है' तो वह अवश्य चौंक पड़ेगा और भागने का उद्योग करेगा। शब्द योजना का प्रभाव देखिए! प्रत्येक मनुष्य का धर्म है कि वह इस कार्य में बड़ी सावधानी रक्खे। बहुत से शब्दों को जोड़ने ही से भाषा उत्पन्न नहीं होगी, उसमें उपयुक्त क्रम, चुनाव और परिमाण का विचार रखना होता है। निश्चय जानिए कि शब्दों के मेल में बड़ी शक्ति है। एक भावुक मनुष्य थोड़े से शब्दों को लेकर भी वह वह चमत्कार दिखला सकता है जो एक स्तब्ध चित्त का मनुष्य चार भाषाओं का कोश लेकर भी नहीं सुझा सकता। कुछ दिन पहले हमारी हिन्दी की स्थिति ऐसी हो गई थी कि उसका विचार क्षेत्र में अग्रसर होना कठिन देख पड़ता था। बने बनाए समास, जिनका व्यवहार हजारों वर्ष पहले हो चुका था, लाकर भाषा अलंकृत की जाती थी। किसी परिचित वस्तु के लिए जो जो विशेषण बहुत

काल से स्थिर थे, उनके अतिरिक्त कोई अपनी ओर से लाना मानो भारतभूमि के बाहर पैर बढ़ाना था। यहाँ तक कि उपमाएँ भी स्थिर थीं मुख के लिए चन्द्रमा, हाथ पैर के लिए कमल, प्रताप के लिए सूर्य, कहाँ तक गिनावैं। जहाँ इनसे आगे कोई बढ़ा कि वह साहित्य में अनभिज्ञ ठहराया गया अर्थात् इन सब नियत उपमाओं का जानना भी आवश्यक समझा जाता था। पाठक! यह भाषा की स्तब्धता है, विचारों की शिथिलता है और जाति की मानसिक अवनति का चिह्न है। अब भी यदि हमारे कोरे संस्कृतज्ञ पंडितों से कोई बात छेड़ी जाती है तो वे चट कोई न कोई श्लोक उपस्थित कर देते हैं और उसी के शब्दों के भीतर चक्कर खाया करते हैं, हजार सिर पटकिए वे उसके आगे एक पग भी नहीं बढ़ते। यदि कोई जाल वा धोखे से किसी की सम्पत्ति हर ले तो पंडितजी कदाचित् उसके सम्मुख उसके कार्य की आलोचना इसी चरण से करेंगे 'स्वकार्यं साधायेध्दीमान्'। उनकी विचार शक्ति इन श्लोकों से चारों ओर जकड़ी हुई है, उसको अपना हाथ पैर हिलाने की स्वच्छन्दता कभी नहीं मिलती। ऐसी दशा में उन्नति के मार्ग में एक पग भी आगे बढ़ना कठिन होता है।

इसी प्रकार अनुप्रास से टँकी हुई शब्दों की लम्बी लम्बी लरी इस बात को सूचित करती है कि लेखक का ध्या न विचारों की अपेक्षा शब्दों की ध्वनि की ओर अधिक है। आरम्भ ही में कहा गया कि भाषा का प्रधान उद्देश्य लोगों को भावों व विचारों तक पहुँचाना है न कि नाद से रिझाना जो कि संगीत का धर्म है। शब्दमैत्री वा यमक दिखलाने के उद्देश्य से ही लेखनी उठाना ठीक नहीं; यदि आपकी कल्पना में सद्गुण की कोई मनोहारिणी छाया देख पड़ी हो तो आप उसे खींचकर संसार के सन्मुख उपस्थित कीजिए, यदि आपके हृदय में विचारों के रगड़ से कोई ऐसी ज्योति उत्पन्न हुई हो जिसके प्रकाश में जीव अपना भला बुरा देख सकते हों, तो आप उसे बाहर लाइए; अन्यथा व्यर्थ कष्ट न उठाइए। हम देखते हैं कि इसी रुचि वैलक्षण्य के कारण हमारे हिन्दी काव्य का अधिक भाग हमारे काम का न रहा। वहाँ विचित्र ही लीला देखने में आती है। घनाक्षरी, कवित्ता और सवैया के 'कविन्दों' ने कुछ शब्दों का अंग भंग कर दो? एक ('सु' ऐसे) अक्षरों की अगाड़ी पिछाड़ी लगाकर बलात् और निष्प्रयोजन उन्हें एक में नाथ रखा है। वर्णन शक्ति की शिथिलता के कारण रसों (Sentiments) के उद्रेक के लिए अत्यन्त अधिकता से ध्वनि का सहारा लिया गया है। ऋंगार रस की कविता में 'सरस' 'मंजु' 'मंजुल' आदि शब्दों के हेतु कुछ स्थान खाली करना पड़ा है ''मंजुल मूलद गुंजै मंजरीनमंजु मंजु मुदित मुरैली अलबेली डोलैं पात पात।'' कविजी ने न जाने किस लोक में मुरैलियों को पत्तों पर दौड़ते देखा है। इसी प्रकार जहाँ वीर रस की चर्चा है वहाँ द्वित्व और वर्ग का विस्तार है, जैसे ''डरि डरि ढरि गये अडर डराय ढह ढरढर ढर के धाराधार के धारके'' किन्तु इस 'खडड बडड' के बिना भी वीर रस का संचार किया जा सकता है, इस बात के उदाहरण शेखर कवि का 'हम्मीर हठ', भारतेन्दु की 'विजयिनीविजयवैजयन्ती' और 'नीलदेवी' विद्यमान हैं। आज सैकड़ा पीछे कितने आदमी मतिराम, भूषण और श्रीपति सुजान के कविताओं को अनुराग से पढ़ते तथा उनके द्वारा किसी आवेग में होते हैं? पर वहीं सूर, तुलसी, केशव, रहीम और बिहारी आदि की

कविता हमारे जातीय जीवन के साथ हो गई है। उनकी एक एक बात हमारे किसी काम में अग्रसर होने वा न होने का कारण होती है। इस भेदभाव का कारण क्या है? वही एक में शब्दों का व्यर्थ आडम्बर और दूसरी में भावों की स्वच्छता तथा वर्णन की उपयुक्तता। वे 'चटकीले मटकीले' शब्द लाख करने पर भी हमारे हृदय पर अधिकार न जमा सके; निकलकर हवा में मिल जाना ही उनके कार्य का शेष होता है। क्योंकि सृष्टि के नियमानुसार स्वर्गीय पदार्थ ही एक दूसरे में लीन होने को झुकते हैं; जल ही जल की ओर जाता है, इसी प्रकार चित्त की उपज ही चित्त में धंसती है।

प्रत्येक साहित्य के अर्थालंकार में, प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष, उपमा का प्रयोग बहुत अधिक होता है क्योंकि भौतिक पदार्थों के व्यापार, विस्तार, रूप रंग तथा मानसिक अवस्थाओं की स्थिति, क्रम, विभेद आदि का सम्यक् ज्ञान उत्पन्न करने के लिए बिना उसके काम नहीं चल सकता। इसका प्रयोग जान व अनजान में हम हर घड़ी किया करते हैं; छोटे छोटे विचारों को व्यक्त करने में भी हम बिना उसका सहारा लिए नहीं रह सकते हैं, यहाँ तक कि हमारे सब अगोचर पदार्थवाची शब्द आरम्भ में इसी (उपमा) की क्रिया से बने हैं; यह भाषा की बनावट के इतिहास से प्रमाणित है। जब शब्दों का यह हाल है तब फिर इस प्रकार की अपार्थिव भावनाओं का क्या कहना है। उनका अनुभव तो हम पार्थिव पदार्थों ही के गुण और व्यापार के अनुसार करते हैं। अर्थात् भौतिक वस्तुओं के गुण और धर्म को अपार्थिव वस्तुओं में स्थापित करके ही हम आध्यातत्मिक विषयों की मीमांसा करते हैं। साधारण दृष्टान्त लीजिए ''दया ने प्रतीकार की इच्छा को दबा दिया।'' ''उसके प्रेम से परिपूर्ण हृदय में प्रिय के दुर्गुणों के विचार की जगह न रही।'' पहले में भौतिक पदार्थों के गुरुत्व और अपने से हलके पदार्थों को दबाकर उभड़ने से रोकने की क्रिया का आभास है; इसी प्रकार दूसरे में पदार्थों के स्थान छेंकने का धर्म स्थापित किया गया है। बात यह है कि इन नियमों से पार्थिव और आध्याात्मिक दोनों सृष्टियाँ समान रूप से बद्धा हैं।

उपमा का कार्य सादृश्य दिखलाकर भावना को तीव्र करना है। जिस वस्तु के लिए हम कोई शब्द नहीं जानते उसका बोध उपमा ही द्वारा कराते हैं, जैसे जो मनुष्य हारमोनियम का नाम नहीं जानता वह उसकी चर्चा करते समय यही कहेगा कि वह संदूक के समान एक बाजा है। यदि किसी वस्तु का विस्तार इतना बड़ा है कि हम उसे निर्दिष्ट शब्दों में नहीं बतला सकते तो हम चट उतने ही वा उससे बहुत अधिक विस्तृत अन्य पदार्थ की ओर इंगित करते हैं, जैसे ''हरियाली चारों ओर समुद्र के समान लहराती देख पड़ी।'' ''ज्वालामुखी से भाप और राख उठकर बादल के समान आकाश में छा गई।'' हम यह न देखने जायँगे कि समुद्र का विस्तार हरियाली के फैलाव से नाप में न जाने कितना वर्गमील बड़ा है; इसकी हमें कोई आवश्यकता नहीं, यह बात निरीक्षण के समय हमारी दृष्टि की पहुँच के बाहर की है। अतएव जब तक हम विवेचना शक्ति का सहारा न लें, वह हमारी प्राप्त भावनाओं में अन्तर नहीं डाल सकती। निरीक्षण के समय हमारी दृष्टि की पहुँच के भीतर

इन दोनों (हरियाली और समुद्र) का अन्त नहीं होता यही इनमें समानता है। यदि किसी महाविशाल पिंड के आकार का परिज्ञान कराना रहता है तो उसकी तुलना हम समान आकार वाले किसी छोटे पदार्थ से करते हैं; तदनन्तर उस छोटे पिंड में उस आकार के गुण धर्म को दिखलाकर हम उनकी स्थापना बड़े पिंड में करते हैं, जैसे स्कूलों में लड़कों से कहा जाता है कि ''लड़को! पृथ्वी नारंगी के समान गोल है''; क्योंकि ऐसी उपमा से हमारा कुछ काम नहीं निकलता। पदार्थों के व्यापार, गुण और स्थिति को स्पष्ट करके उनका तीव्र अनुभव कराना उपमा का काम है, और कुछ नहीं। अतएव एक ही वस्तु के लिए पचीसों उपमाओं का तार बाँध देना, उपमा कथन के हेतु ही किसी वस्तु को वर्णन करने बैठ जाना और उससे किसी अंश में समानता रखनेवाले पदार्थों की सूची तैयार करना उचित नहीं है। जैसे प्रभातकालीन सूर्यमंडल को देख यही बकने लगना कि ''यह थाली के समान है'' अथवा ''शोणित सागर में बहता हुआ स्वर्ण कलश है'' वा ''स्वर्गलोक की झलक दिखलाने वाली गोल खिड़की है'' किंवा ''होली की महफिल में रखे हुए लैम्प का ग्लोब है'' यह वाणी का सदुपयोग नहीं कहा जा सकता। मेरा अभिप्राय यह है कि उपमा का प्रयोग आवश्यकतानुसार ही होता है; उसका अनावश्यक और अपरिमित प्रयोग प्रलाप है। अकेले वा पृथक् रूप में वह इस योग्य नहीं कि उसे भरने के लिए हम एक प्रबन्ध वा पुस्तक लिख डालें। यही बात सब अलंकारों के लिए कही जा सकती है। किसी वस्तु को उसकी सीमा के बाहर घसीटना उसको उसके गुण से च्युत करना है। यह बात हमारी हिन्दी कविता में प्रत्यक्ष देखने में आती है। किसी नीतिज्ञ ने अन्योक्तियों ही का कल्पवृक्ष लगाया है; किसी नायिका भेद के भक्त ने अकेली नवोढ़ा ही का आदर्श दिखलाया है; किसी नखसिख निहारने वाले ने 'अलक' और 'तिल' ही पर शतक बाँध है। आप ही कहिए कि इतने संकुचित स्थान में भीतरी और बाहरी सृष्टि के कितने अंश का व्यापार दिखलाया जा सकता है और पाठक का ध्यान बिना ऊबे हुए कब तक उसमें बद्धा रह सकता है।

धर्म वा व्यापार के पूर्णतया प्रत्यक्ष न होने के कारण जब किसी वस्तु की भावना धुधँली वा मंद होती है तब उसको तीक्ष्ण और चटक करने के लिए समान धर्म और गुणवाले अन्य अधिक परिचित पदार्थों को हम आगे रखते हैं। किन्तु काव्य की उपमा में एक और बात का विचार भी रखना होता है। वह यह है कि सादृश्य दिखलाने के लिए जो पदार्थ उपस्थित किए जायँ वे प्राकृतिक और मनोहर हों, कृत्रिम और क्षुद्र नहीं, जिसमें ज्ञानदान के अर्थ जो रूप उपस्थित किए जायँ वे रुचिकर होने के कारण कल्पना में कुछ देर टिकें और हमारे मनोवेगों (sentiments) को उभाड़ें जो हमें चंचल करके कार्य में प्रवृत्त करते हैं। उपमान और उपमेय में जितनी ही अधिाक बातों में समानता होगी उतनी ही उपमा उत्कृष्ट कही जायगी।

(आनन्द कादम्बिनी, ज्येष्ठ से अग्रहायण सं. 1964 वि. 1907 ई.)

(चिन्तामणि, भाग-3)

Mānaviki

An Interdisciplinary Journal of Humanities & Social Sciences

Subscription Form

Editor,
Mānavikī
Maharana Pratap P.G. College
Jungle Dhusar, Gorakhpur-273014

Dear Editor,

I/we would like to subscribe to the *Mānavikī*, an interdisplinary journal of Humanities and Social Sciences, published by you. Subscription amount Rs./US$.....is being enclosed herewith by cheque*/demand draft no. ..... drawn on ..... Kindly enrol my/our - Annual/ Five Year/Life subscription** and arrange to send the issues of the journal on the following address :

Name of Individual/Institution : .....

Address : .....

.....

City : ..... Pin/Zip .....

State : ..... Country :.....

Subscription Rates

	Individual		Institutional	
Annual	Rs. 300	US $ 30	Rs. 500	US $ 50
Five Years	Rs. 1250	US $ 80	Rs. 2000	US $ 125
Life (15 Years)	Rs 2500	US $ 150	Rs. 4000	US $ 200

* All cheques/demand drafts should be drawn in favour of *Mānavikī* payable at Gorakhpur. In case of outstation cheques please add Rs. 30/US$ 2 for clearing expenses.

** Please tick the desired subscription period.

Maharana Pratap P.G. College
Jungle Dhusan, Gorakhpur
Mob. : 9794299451, 9452971570 • E-mail : mpmpg5@gmail.com

GUIDELINES FOR CONTRIBUTORS

1. Contribution should be submitted in duplicate, the first two impressions of the typescript. It should be typed in font Walkman-Chanakya (Hindi) and in Times New Roman (English) on a quarter or foolscap sized paper, in double-space and with at least one and a half inch margin on the right. Two copies of a computer printout along with a CD are preferred. They should subscribe strictly to the Journal format and style requirements.

2. The cover page of the typescript should contain: (i) title of the article, (ii) name (s) of author(s), (iii) professional affiliation, (iv) an abstract of the paper in less than 150 words, and (v) acknowledgements, if any. The first page of the article must also provide the title, but not the rest of the item of cover page.

3. Though there is no standard length for articles, a limit of 5000 words including tables, appendices, graphs, etc., would be appreciated.

4. Tables should preferably be of such size that they can be composed within one page area of the Journal containing about 45 lines, each of about 85 characters (letter/digits). The source(s) should be given below each table containing data from secondary source(s) or results from previous studies.

5. Figures and charts, if any, should be professionally drawn using such materials (like black ink on transparent papers) which allow reproduction by photographic process. Considering the prohibitive costs of such process, figures and charts should be used only when they are most essential.

6. Indication of notes should be serially numbered in the text of the articles with a raised numeral and the corresponding notes should be given at the end of the paper.

7. A reference list should appear after the list of notes. It should contain all the articles, books, reports, etc., referred in the text and they should be arranged alphabetically by the names of authors or institutions associated with those works.

   (a) Reference to books should present the following details in the same order: author's surname and name (or initials), year of publication (within brackets), title of the book (underlined/italic), place of publication. For example:

   Chakrabarti, D.K. (1997), *Colonial Indology: Socio-politics of the Ancient Indian Past,* pp. 224-25, New Delhi

   (b) Reference to institutional publications where no specific author(s) is (are) mentioned should present the following details in the same order. institution's name, year of publication (within brackets), title of the publication (underlined/italic), place of publication. For example:

   Ministry of Human Affairs (2001), *Primary Census Abstract,* New Delhi, pp. xxxviii.

   (c) Reference to articles in periodicals should present the following details in the same on: the author's surname and name (or initials), year of publication (in brackets), title of the article (in double quotation marks), title of periodical (underlined/italic), number of the volume and issue (both using Arabic numerals); and page numbers. For example:

   Siddiqui, F.A. and Naseer, Y. (2004), "Educational Development and Structure of Works participation in western Uttar Pradesh", *Population Geography,* Vol. 26, Nos. 1 & 2, pp. 25-26.

   (d) Reference in the text or in the notes should simply give the name of the author or institution and the year of publication, the latter within brackets; e.g. Roy (1982). Page numbers too may be given wherever necessary, e.g. (Roy 1982: pp. 8-15).

मानविकी

मानविकी एवं समाज-विज्ञान की अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका

In the Pious Memory of

ब्रह्मलीन पूज्य महंत अवेद्यनाथ जी महाराज

(18.5.1919 - 12.9.2014)

कल्याण सभी जन का मन से
है किया कि सभी अभय होवें,
होकर अवेद्य भी वेद्य धरा पर
संत प्रवर की जय होवे।

ISSN 0976-0830

Published by Maharana Pratap Post Graduate College, Jungle Dhusan, Gorakhpur (U.P.)
E-mail : bissgkp2017@gmail.com, manvikijournal@gmail.com
Printed at Moti Paper Convertors, Betia Raj House, Betiahata, Gorakhpur Ph. : 0551-2334184